नई दिल्ली
रविवार, 19अक्तूबर, 2025, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-2 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril. Defend it with all your might — Jawaharlal Nehru

छलावा भर ही हैं ग्रीन पटाखे, यह प्रदूषण रोकने का समाधान नहीं 3

गाजा में शांति का अल्पविराम भर 6

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

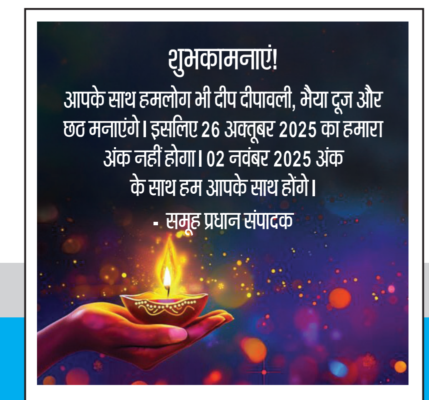

बिहार के चुनावी मौसम का पूर्वानुमान

बिहार चुनाव इसलिए भी रोमांचक है कि निर्वाचन आयोग की कारगुजारियां खुलकर सामने आ चुकी हैं

ए.जे. प्रबल और नंदलाल शर्मा

अभी से बमुश्किल एक माह के भीतर बिहार में नई विधानसभा, नई सरकार और शायद नया मुख्यमंत्री भी होगा। जब यह आलेख लिखा जा रहा था, सभी की नजरें सीटों के लिए हो रही खींचतान पर थी कि किस पार्टी को कितनी सीटें मिलीं और 'इंडिया' या एनडीए में से कौन-सा गठबंधन ज्यादा उलझा लग रहा है। हकीकत तो यह है कि दोनों ही गठबंधनों को कई तरह की गांठें सुलझानी हैं।

एक बार फिर मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के भविष्य को लेकर अटकलों का बाजार गर्म है। लगभग 20 साल से बिहार में मुख्यमंत्री की कुर्सी पर जमे नीतीश कुमार ने इस दौरान राजनीतिक हवा का रुख भांपने की कमाल की काबिलियत दिखाई। इस बार मुद्दा उनकी खराब सेहत का है, जिस कारण उनकी अपनी पार्टी जनता दल (यूनाइटेड) पर उनकी कमजोर पकड़ से जुड़ी तरह-तरह की बातें हवा में तैर रही हैं। हाल ही में नीतीश के सार्वजनिक व्यवहार को ध्यान में रखते हुए बात करें, तो यही कहा जा सकता है कि ये सिर्फ अफवाह नहीं।

16 अक्तूबर को एक टीवी चैनल से बातचीत में केन्द्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने यह तो साफ कहा कि बिहार में 6 और 11 नवंबर को दो चरणों में होने वाला चुनाव एनडीए नीतीश कुमार के नेतृत्व में ही लड़ेगा, लेकिन मुख्यमंत्री कौन होगा, इस पर उन्होंने कहा कि घटक दल चुनाव के बाद फैसला करेंगे। यह दो बातों का साफ संकेत है- पहला, कि भाजपा अपने सहयोगी और उसके सबसे बड़े 'चेहरे' को कैसे आंक रही है, जिसके बिना आज भी वह बिहार में चल नहीं सकती और दूसरा, बेशक चुनाव तक उस व्यक्ति के साथ रहना उसकी बाध्यता है, लेकिन बाद में शायद वह उसकी पीठ में छुरा भोंक दे।

दो जद(यू)

बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार में कितना दम-खम बचा है, कोई नहीं जानता। कुछ विश्लेषक नीतीश की सत्ता में टिके रहने की काबिलियत, मौका ताड़कर पाला बदलने की छवि और उनकी संदिग्ध वैचारिक प्रतिबद्धता के आधार पर भविष्यवाणी कर रहे हैं कि नीतीश सत्ता के शीर्ष पर बने रहेंगे। कुछ जानकार कह रहे हैं कि नीतीश की राजनीतिक पारी अंत के कगार पर है। वह इसके लिए पार्टी में फैली गड़बड़ियों और पार्टी के राष्ट्रीय कार्यकारी अध्यक्ष संजय झा और ललन सिंह के नाम से पहचाने जाने वाले केन्द्रीय मंत्री राजीव रंजन सिंह की हरकतों को संकेत बता रहे हैं। ललन सिंह जुलाई 2021 से दिसंबर 2023 तक जद(यू) के राष्ट्रीय अध्यक्ष थे। उन्हें नीतीश विरोधियों के साथ हाथ मिला लेने के आरोपों में अध्यक्ष पद से हटाया गया था। ये दोनों नेता अब भी जद(यू) के साथ हैं लेकिन भाजपा के करीबी माने जाते हैं। इस तरह की अफवाह है कि जद(यू) टूटने वाला है और पार्टी से खफा धड़े को चुनाव के बाद भाजपा में जगह मिल जाएगी। पार्टी में नीतीश के वफादारों को इसका अंदाजा है और उनको यह डर है कि ऐसा न हो कि उनके पास मोलभाव करने का कोई रास्ता न रहे। नीतीश के कट्टर दुश्मन लोक जनशक्ति पार्टी (रामविलास) के चिराग पासवान को ऐसी सीटें दी गई हैं जिन पर जद(यू) का भी दावा है। इसी कारण नीतीश ने बागी तेवर अपना लिए हैं और चिराग की पार्टी को दी गई 29 सीटों में से कुछ पर जद(यू) के उम्मीदवार उतार दिए हैं।

पासवान ने 2020 का विधानसभा चुनाव अकेले लड़ा था। हालांकि वह सिर्फ एक ही विधानसभा सीट जीत पाए, लेकिन माना जाता है कि उनकी पार्टी ने तब जद(यू) को अच्छा-खासा नुकसान पहुंचाया जिससे भाजपा को गठबंधन और सरकार में तोलमोल की ज्यादा ताकत मिल गई। इस बात की मजबूत आशंकाओं को देखते हुए कि अगर एनडीए जीतता है, तो नीतीश को मुख्यमंत्री पद से हटाया जा सकता है। उनके वफादारों ने बराबर मांग की है कि नीतीश को चुनाव के पहले ही मुख्यमंत्री का चेहरा घोषित किया जाए। लेकिन अब तक तो ऐसा नहीं हुआ है और आगे भी ऐसा होता नहीं दिख रहा। ऐसे में यह जानने के लिए इंतजार करना होगा कि क्या नीतीश के पास अब भी कोई तुरुप का इक्का है?

ईबीसी पर दांव

इंडिया ब्लॉक के सामने भी सीटों के तालमेल से जुड़ी अपनी चुनौतियां हैं। लेकिन अगर आप 'चरण-चुंबक' मीडिया के कोरस को सुनेंगे, तो आपको इनका आकार जरूरत से ज्यादा बड़ा दिखेगा, क्योंकि ऐसा मीडिया इंडिया ब्लॉक के घटक दलों में मतभेद का बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहा है। उदाहरण के लिए, विकासशील इंसान पार्टी (वीआईपी) के मुकेश साहनी ज्यादा सीटें मांगने के कारण सुर्खियों में रहे। अफवाह तो यहां तक थी कि वह भाजपा के 'धनकुबेरों' से तोलमोल कर रहे थे।

कांग्रेस ने 24 सितंबर को राज्य के अति पिछड़ा समुदायों (ईबीसी) के लिए अपना 10-बिंदुओं वाला घोषणापत्र 'अति पिछड़ा न्याय संकल्प' जारी किया। पार्टी के लिए ईबीसी की आवाज, उनका प्रतिनिधित्व और उन्हें मजबूत करने की प्रतिबद्धता सिर्फ कहने की बात नहीं। 'न्याय संकल्प' उस नजरिये को जाहिर करने और नीतिगत इरादे का ऐलान है। कांग्रेस और इंडिया ब्लॉक के उसके साथी ईबीसी वोट की रणनीतिक कीमत समझते हैं। राज्य में इस समुदाय के वोटर एक तिहाई से ज्यादा हैं।

यह समझदारी मुकेश साहनी को अपने साथ रखने की कोशिशों में साफ दिखी। हालांकि, इस आलेख को लिखे जाने तक इंडिया ब्लॉक ने सीटों पर तालमेल की कोई आधिकारिक घोषणा नहीं की थी, लेकिन साहनी ने राहुल गांधी को लिखे एक पत्र में गठबंधन के लिए अपनी प्रतिबद्धता जरूर जताई। उन्होंने साफ तौर पर लिखा कि मुद्दा यह नहीं था कि उनकी पार्टी को कितनी सीटें मिलें, बल्कि "सांप्रदायिक और विभाजनकारी ताकतों से लड़ना" था।

सीपीआई-एमएल नेता दीपांकर भट्टाचार्य ने भी साहनी को साथ रखने की कोशिशों पर जोर देते हुए कहा कि बड़ी पार्टियों को गठबंधन की एकता बनाए रखने के लिए एक-दो सीटों को छोड़ना चाहिए और उनकी पार्टी ऐसा करने को तैयार है। कांग्रेस ने इस रुख का समर्थन किया। कहा जा रहा है कि राहुल गांधी के दखल के बाद, राजद साहनी को 15 सीटें देने पर तैयार हो गया है। कुछ अन्य रिपोर्ट्स के मुताबिक, साहनी को एक राज्यसभा सीट और दो एमएलसी देने की भी पेशकश की गई।

> नीतीश को लेकर फिर अटकलों का बाजार गर्म है। केन्द्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने यह तो कहा कि बिहार में नीतीश के ही नेतृत्व में चुनाव लड़ा जाएगा, लेकिन उन्होंने यह नहीं कहा कि वही एनडीए के सीएम होंगे। उन्होंने कहा, इस पर घटक दल चुनाव के बाद फैसला करेंगे

हिन्दी फिल्मों में कभी सेट डिजाइनर के तौर पर काम करने वाले मुकेश साहनी ने 2015 के विधानसभा चुनाव से पहले 'निषाद विकास संघ' बनाकर भाजपा के लिए प्रचार किया था। लेकिन निषाद समुदाय को अनुसूचित जाति की सूची से बाहर रखने के मामले में वह भाजपा से अलग हो गए। 2018 में उन्होंने 'विकासशील इंसान पार्टी' शुरू की।

***

बिहार में ईबीसी के तांती-तंतवा यानी पान समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले इंजीनियर इंद्र प्रकाश गुप्ता भी इंडिया ब्लॉक में शामिल हो गए हैं। एक वीडियो बयान में गुप्ता ने कहा कि उनकी इंडियन इंक्लूसिव पार्टी (आईआईपी) को तीन सीटें दी गई हैं, जिन पर उनके उम्मीदवार पार्टी के 'कन्नी' चिह्न पर चुनाव लड़ेंगे। इसके अलावा, 'तीन से चार' राजद/कांग्रेस के चिह्न पर चुनाव लड़ेंगे। उन्होंने खुद सहरसा सीट से अपना नामंकन दाखिल किया है। यह याद रखा जाना चाहिए कि अप्रैल 2025 में गुप्ता ने पटना के गांधी मैदान में एक बड़ी 'पान समाज अधिकार रैली' आयोजित करके अपनी ताकत दिखाई थी।

शेष पेज 2 पर ▸

"चार सांसद नहीं, मुझे चार लाख नौकरियां दिखाइए"

आरएसएस-भाजपा के इस दौर में एक दलित को हर दिन उत्पीड़न और अपमान के लिए तैयार रहना चाहिए, चाहे वह भारत के मुख्य न्यायाधीश हों या आईपीएस अधिकारी। यह टिप्पणी दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दू कॉलेज में इतिहास के प्रोफेसर रतन लाल की है। रतनलाल की यह टिप्पणी उस व्यवस्थागत भेदभाव के उनके निजी अनुभव का बयान है, जो उनकी पदोन्नति में भी बाधक बना, लेकिन तेवर वाला यह मुखर बुद्धिजीवी चुपचाप उत्पीड़न सह जाने वालों में से नहीं है। 52 वर्षीय आईपीएस अधिकारी वाई. पूरन कुमार की हालिया आत्महत्या का जिक्र करते हुए वह कहते हैं, "हमें झुकना नहीं चाहिए। हमें इस हमले का विरोध करना चाहिए। अपनी जान लेना कोई समाधान नहीं है।" उन्होंने एक सुसाइड नोट छोड़ा था जिसमें "घोर जाति-आधारित भेदभाव, लक्षित मानसिक उत्पीड़न, सार्वजनिक अपमान और अत्याचार" का आरोप लगाया गया था। बिहार के मुजफ्फरपुर में जन्मे प्रोफेसर **रतन लाल** एक कार्यकर्ता और हाशिये के समुदायों के छात्रों के लिए धन जुटाने वाले भी हैं और 'अंबेडकरनामा' नामक एक यूट्यूब चैनल का संपादन भी करते हैं। **नंदलाल शर्मा** से बातचीत के कुछ अंश:

हाल ही की तीन घटनाएं याद आ रही हैं- सुप्रीम कोर्ट के अंदर मुख्य न्यायाधीश पर जूता फेंका गया, हरियाणा में एक दलित आईपीएस अधिकारी ने खुद को गोली मार ली और उत्तर प्रदेश के रायबरेली में भीड़ ने एक दलित युवक की पीट-पीटकर हत्या कर दी। आप इन घटनाओं को कैसे देखते हैं?

आरएसएस और भाजपा से आप और उम्मीद भी क्या करते हैं? मुख्य न्यायाधीश पर हमला राज्य, संविधान और गणतंत्र पर हमला है। मुख्य न्यायाधीश के शांत रहने की तारीफ करके, प्रधानमंत्री कह रहे हैं कि उन्होंने समझदारी से काम लिया। दरअसल, वह दलितों को उनकी जगह दिखा रहे हैं। अगर उन्हें कानून के राज की जरा भी चिंता होती, तो वह उस वकील के खिलाफ कार्रवाई सुनिश्चित करते जिसने 'सनातन धर्म' की रक्षा के नाम पर जूता फेंका था। न तो कोई एफआईआर दर्ज की गई, न ही उन लोगों के खिलाफ कोई कार्रवाई हुई जिन्होंने मुख्य न्यायाधीश की जातिगत पहचान पर सोशल मीडिया पर धमकी भरी भद्दी टिप्पणियां कीं और आपत्तिजनक मीम्स पोस्ट किए।

बाबासाहेब आम्बेडकर ने नेहरू से मतभेदों के चलते मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया था। क्या रामदास अठावले (केन्द्र सरकार में सामाजिक न्याय मंत्री) ने मुख्य न्यायाधीश के अपमान पर इस्तीफा दिया? क्या जीतन राम मांझी या चिराग पासवान ने इसकी निंदा की?

पिछड़े समुदायों के लिए आरक्षण, भर्ती अभियान और छात्रवृत्ति के माध्यम से पिछली कांग्रेस सरकारों ने इन लोगों के उत्थान के लिए सकारात्मक कदम उठाए। हमारे प्रधानमंत्री अपनी ओबीसी पहचान का बखान करते हैं, भाजपा केन्द्रीय मंत्रिमंडल में ओबीसी मंत्रियों को शामिल करती है, लेकिन उन्होंने ओबीसी के लिए किया क्या है?

ऊंची जातियों, ब्राह्मणों (जो सामाजिक पदानुक्रम में सबसे ऊपर हैं) को यह समझ ही नहीं आ रहा है कि इस शासन-सत्ता से उन्हें कोई लाभ नहीं होने वाला है, आरएसएस-भाजपा संविधान और उसकी सभी गारंटियों के लिए अस्तित्व का खतरा हैं। कुछ ब्राह्मण तो अच्छी कमाई कर सकते हैं, लेकिन जरा जाकर देखिए कि एनसीआर में कितने ब्राह्मण 15,000 से 20,000 रुपये या उससे भी कम तनख्वाह पर सुरक्षा गार्ड की नौकरी कर रहे हैं। मोदी ने किया क्या है, सिवाय इसके कि भारतीयों को अडानी ग्रुप के लिए 30,000 रुपये महीने पर काम करने के लिए मजबूर कर दिया? मुझे चार ओबीसी मंत्री मत दिखाइए, लोगों के लिए चार लाख सुरक्षित नौकरियां दिखाइए।

हाल ही में लखनऊ में आयोजित बसपा प्रमुख मायावती की जनसभा को आप किस तरह देखते हैं। वह उत्तर प्रदेश में भाजपा सरकार की प्रशंसा कर रही थीं, लेकिन कांग्रेस और समाजवादी पार्टी की आलोचना की और बिहार चुनाव में समर्थन की अपील की...

वह उतना ही अच्छा करेंगी, जितना आरएसएस-भाजपा उन्हें करने देगी। उन्हें उनके एजेंडे से कोई वैचारिक समस्या नहीं है। वह उत्तर प्रदेश में भाजपा के साथ कई बार सरकार में रह चुकी हैं। क्या बसपा ने 'ब्रह्मा, विष्णु, महेश है / हाथी नहीं, गणेश है' और 'ब्राह्मण शंख बजाएगा / हाथी चलता जाएगा' जैसे नारे नहीं गढ़े थे? इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि बसपा अब उत्तर प्रदेश तक ही सीमित रह गई है और उसका वोट शेयर पहले के 22-23 प्रतिशत से घटकर 9 प्रतिशत रह गया है।

दलितों के मायावती से निराश होने के वाजिब और पर्याप्त कारण हैं। क्या उन्होंने दलितों की स्थिति सुधारने के लिए एक भी राष्ट्रीय पहल की, अत्याचारों के खिलाफ विरोध प्रदर्शन की तो बात ही छोड़ दीजिए? नेहरू, इंदिरा गांधी और राजीव गांधी ने दलितों को छात्रवृत्ति, मुफ्त शिक्षा, नौकरियों में आरक्षण, पेंशन, साहूकारों से राहत दिलाई... क्या उन्होंने कभी इसके लिए उनका शुक्रिया अदा किया है?

बिहार में नीतीश कुमार को 'विकास पुरुष' कहा जाता है। राज्य के दलितों को उनके प्रति कितना कृतज्ञ होना चाहिए?

नीतीश कुमार ने राज्य में कितने सार्वजनिक उपक्रम स्थापित किए हैं? कितने कॉलेज और विश्वविद्यालय खोले? रोजगार यहीं से तो पैदा होते हैं। उद्योग का क्या? बिहार में पहले 37 चीनी मिलें हुआ करती थीं। राज्य में एनडीए सरकार के लगभग 20 साल बीत जाने के बावजूद अब एक भी चालू नहीं है। दरभंगा में पेपर मिल थी, छपरा में रेलवे यार्ड था... वे कहां हैं? लालू प्रसाद ने भी अन्य पहलों के अलावा विश्वविद्यालय और रेलवे यार्ड स्थापित किए।

यह एनडीए ही है जिसने बिहार में शिक्षा को बदहाल कर दिया। एक समय था जब हर जिले में एक जिला स्कूल होता था, जिसे सबसे अच्छा माना जाता था, जहां गरीब और अमीर, दोनों तरह के लोग, डीएम/एसपी के बच्चे भी पढ़ते थे। पटना साइंस कॉलेज, पटना कॉलेज और एलएस कॉलेज मुजफ्फरपुर की गिनती सर्वश्रेष्ठ में होती थी। इनमें दाखिला नहीं मिल पाता था, तभी छात्र पढ़ाई के लिए दिल्ली जाते थे। आज क्या स्थिति है? क्या नेताओं और नौकरशाहों के बच्चे सरकारी स्कूलों में जाते हैं और क्या वे सरकारी अस्पतालों में इलाज करवाते हैं? छात्रवृत्ति और फेलोशिप का क्या हुआ?

कृपया मुझे यह मत बताइए कि आपने कितने दलित मंत्रियों, विधायकों और राजनेताओं को पदोन्नति दी है। यह विकास का आदर्श नहीं हो सकता।

क्या पहले हालात कुछ बेहतर थे?

आप जानते हैं कि कांग्रेस के जमाने में भी, या जब यूपीए सत्ता में थी, हम सरकार के खिलाफ विरोध प्रदर्शन और आंदोलन करते थे। लेकिन तब हमें कभी सताया नहीं गया। विश्वविद्यालयों में आरएसएस से जुड़े लोगों के साथ, अगर वे दूसरे मानदंडों पर खरे उतरते थे, तो अछूतों जैसा व्यवहार नहीं किया जाता था। वे समाजवादी, वामपंथी पृष्ठभूमि के लोगों के साथ-साथ कांग्रेस के करीबी लोगों के साथ भी स्पेस साझा करते थे। उनके राजनीतिक झुकाव पदोन्नति, अवकाश, शोध करने या किताब लिखने के लिए छुट्टी लेने जैसे मामलों में आड़े नहीं आते थे। लेकिन आजकल आपको अपना हक पाने के लिए आरएसएस-भाजपा के चरणों में गिरना पड़ता है।

पहले मेडिकल या इंजीनियरिंग कॉलेज में दाखिला मिल जाता था और फीस कुछ हजार रुपये सालाना होती थी। अब तो प्रवेश पाने के लिए भी करोड़ों रुपये चाहिए। किसके पास करोड़ों रुपये हैं? संविधान समान अवसरों का वादा करता है- नौकरी, शिक्षा, पेंशन... भाजपा ने ये सब छीन लिया है। शिक्षा बेहद महंगी हो गई है और नौकरियां लगातार कम होती जा रही हैं।

क्या लोगों को दीवार पर लिखी इबारत समझ आ रही है?

हम अपनी तरफ से पूरी कोशिश कर रहे हैं। ■

धान के किसान काट रहे निराशा की फसल

भारी बारिश में बर्बाद हो गईं किसानों की उम्मीदें। नमी के बहाने मंडियों में नहीं की जा रही खरीद

खरीद-बिक्री अमृतसर की एक मंडी में गेहूं की बोरियां ले जाते मजदूर।

हरजिंदर

हरियाणा के सिरसा जिले के किसान रण सिंह एक अक्तूबर को धान की अपनी उपज लेकर रोड़ी अनाज मंडी पहुंचे थे। पहले दो दिन तक तो इस सरकारी खरीद केन्द्र में उनका नंबर ही नहीं आया। नंबर आया, तो कहा गया कि धान में नमी ज्यादा है। इसे सुखा कर लाएं। वह मंडी के एक कोने में ही धान को सुखाने लगे। सुबह धूप निकलने पर धान को फैला देते और शाम होते ही फिर से उन्हें बोरों में भर देते। दिन रात रखवाली का काम तो करना ही पड़ता। 6 अक्तूबर को पश्चिमी विक्षोभ की वजह से हुई भारी बारिश से रोड़ी की अनाज मंडी में पानी भर गया। पानी इतना था कि रण सिंह के बोरों का एक चौथाई हिस्सा डूब गया। उतना धान तो वहीं सड़ गया और बाकी का रंग बिगड़ गया। बची-खुची उम्मीदें भी एक बारिश में ही बरबाद हो गईं।

पंजाब में मानसा जिले के किसान नेता जसबीर सिंह ने बताया कि धान में नमी की समस्या हर साल आती है, लेकिन भारी बारिश और बाढ़ की वजह से यह समस्या कुछ ज्यादा ही है। उनका कहना है कि भारी बारिश के बाद खेतों की जमीन अभी भी गीली है। किसान कंबाइन से निकली उपज को सीधे बोरों में भर कर मंडी में ले जा रहे हैं। ताजा फसल में नमी ज्यादा होती है, इसलिए वह मंडी में रिजेक्ट हो जाती है।

पंजाब की मंडियों में इतनी जगह नहीं कि उसे वहां रखा या सुखाया जाए। उपज को वापस लाना एक तो महंगा पड़ता है, दूसरे खेतों की जो हालत है, उसमें सुखाना मुमकिन भी नहीं है। ऐसे परेशान किसानों का मंडियों के बाहर खड़े व्यापारी इंतजार कर रहे होते हैं। वे उनसे सस्ते दाम पर अनाज खरीद लेते हैं।

धान का इस बार का न्यूनतम समर्थन मूल् 2,389 रुपये प्रति क्विंटल है। भारतीय किसान यूनियन के नेता धर्मेंद्र मलिक ने बताया कि उत्तर प्रदेश की मंडियों के बाहर खड़े व्यापारी परेशान किसानों से 1,500 से 1,700 रुपये की कीमत पर धान खरीद रहे हैं। मलिक ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को चिट्ठी लिखकर मांग की है कि मंडियों के बाहर होने वाली खरीद पर रोक लगाई जाए। इस तरह की मांग माने जाने की अभी तक कोई खबर नहीं है।

देश के तकरीबन सभी राज्यों से किसानों द्वारा अफरातफरी में धान बेचने की खबरें आ रही हैं और नमी के नाम पर कुछ कारोबारी चांदी काट रहे हैं।

हर साल धान की सरकारी खरीद में नमी एक महत्वपूर्ण कारक होती है। एक तो यह मानसून के दौरान ही पकने वाली फसल है, दूसरे इसके उत्पादन में पानी का इस्तेमाल कुछ ज्यादा ही होता है। भारतीय खाद्य निगम जब किसी भी फसल की खरीद करता है, तो उसके लिए खाद्य मंत्रालय के साथ मिलकर फेयर एवरेज क्वालिटी स्पेसीफिकेशन बनाए जाते हैं। धान के लिए इसमें सबसे महत्वपूर्ण मानक है नमी। धान के लिए अधिकतम नमी की सीमा बनाई गई है 17 फीसद। इससे ज्यादा नमी होने पर एफसीआई उपज को रिजेक्ट कर देता है, या किसानों से कहा जाता है कि वे अपनी उपज को सुखा कर लाएं।

विशेष स्थितियों में इस मानक में ढील भी दी जाती है। मसलन, पिछले साल आंध्र प्रदेश में अतिवृष्टि को देखते हुए इसके लिए 24 फीसद तक नमी की इजाजत दी गई थी। तमिलनाडु में 22 फीसद तक नमी वाले धान की खरीद की गई। इसकी मांग बाकी राज्यों ने भी की थी, लेकिन उन्हें रियायत नहीं दी गई।

इस साल भी भारी बारिश और बाढ़ को देखते हुए इस तरह की रियायत की मांग हर जगह से आई थी। यह मांग राज्य सरकारों ने भी की और तमाम किसान संगठनों ने भी। तमिलनाडु ने 22 फीसद नमी की इजाजत देने की मांग की है। तमिलनाडु सरकार ने एक और महत्वपूर्ण सुझाव यह दिया है कि नमी का मानक पूरे राज्य में एक-सा रखने के बजाय, हर जिले में जरूरत के हिसाब से अलग-अलग रखा जाए। आंध्र प्रदेश ने इसे 24 फीसद रखने की मांग की है और तेलंगाना ने 20 फीसद। नमी के मानक में छूट देने की मांग करने वालों में उन राज्यों का नाम नहीं है जहां भाजपा की सरकार है। कावेरी डेल्टा फॉर्मर्स प्रोटेक्शन एसोसिएशन ने सरकार से मांग की है कि किसानों को 25 प्रतिशत तक नमी का धान बेचने की इजाजत दी जाए।

> किसान प्राकृतिक आपदाओं और संस्थागत गैरजिम्मेदारी के शिकार हैं। बेमौसम बरसात, सरकारी खरीद के कड़े मानक और मौकापरस्त व्यापारी सब मिलकर उनकी किस्मत में तब सेंध लगा रहे हैं, जब वे अपनी उपज से भारी उम्मीद बांध कर मंडियों में पहुंच रहे हैं

दिलचस्प बात यह है कि अति वृष्टि और बाढ़ से बार पंजाब सबसे ज्यादा प्रभावित रहा, उसकी तरफ से क्या मांग की गई, यह अभी तक पता नहीं पड़ सका है। पिछले महीने राज्य के मुख्यमंत्री भगवंत सिंह मान ने यह जरूर कहा था कि वह किसानों का कोई नुकसान नहीं होने देंगे, लेकिन सच यही है कि पंजाब के किसान भी औने-पौने भाव पर अपनी फसल बेचने पर मजबूर हैं।

पंजाब में आई भीषण बाढ़ ने इस साल पांच लाख एकड़ में खड़ी फसलों को नुकसान पहुंचाया है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, तीन लाख एकड़ में तो फसल पूरी तरह बरबाद हो गई। बाकी जगह हुआ नुकसान भी बहुत बड़ा है।

लेकिन पंजाब में जहां इतना नुकसान नहीं हुआ है, वहां भी किसान इस समय घाटे में चल रहे हैं। द ट्रिब्यून अखबार की एक रिपोर्ट के अनुसार, अगस्त के अंत में और सितंबर के शुरू में हुई लगातार और भारी बारिश के कारण धान की उपज में भारी कमी आई है। पंजाब में हर साल 27 से 32 क्विंटल प्रति एकड़ धान की उपज होती थी। अखबार के अनुसार, इस साल यह उपज घटकर 23 से 25 क्विंटल प्रति एकड़ रह गई है। वहीं, रोपड़ में सरकारी खरीद में लगे एक अधिकारी का कहना है कि कहीं-कहीं तो यह उपज 20 क्विंटल प्रति एकड़ तक रह गई है। यह आंकड़ा तब है, जब नमीं ज्यादा है। अगर किसान इसे और सुखाकर मापेंगे, तो शायद उपज और भी कम होगी। किसान नेता जसबीर सिंह स्वीकार करते हैं कि उपज में 15 से 20 फीसद की कमी आई है।

समस्या उन किसानों के सामने भी है, जो धान की प्रीमियम किस्मों की खेती करते हैं और उन्हें अपनी फसल बेचने के लिए सरकारी खरीद पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। मसलन, पंजाब के बासमती की खेती करने वाले किसान। पंजाब में इसकी अधिकतर खेती रावी नदी के किनारों वाले इलाके में होती है। बाढ़ के कारण इस साल यहां की अधिकतर फसल बरबाद हो गई है। बासमती चावल की प्रीमियम क्वालिटी पूसा-1509 की खेती करने वाले बलजिंदर सिंह जब अपनी फसल लेकर अमृतसर की मंडी पहुंचे, तो उन्हें उम्मीद थी कि इस बार उपज कम होने के कारण उन्हें बाजार में ज्यादा अच्छी कीमत मिल जाएगी। लेकिन उन्हें पिछली बार के मुकाबले इस बार फसल 800 रुपये प्रति क्विंटल कम भाव पर बेचनी पड़ी। शायद इस बार पंजाब की बाढ़ में मांग और आपूर्ति का नियम भी बह गया है।

मध्य प्रदेश के किसान नेता डॉक्टर सुनीलम का कहना है कि मंडियों में नमी के नाम पर जो हो रहा है, उसमें कुछ नया नहीं है। वहां हर साल किसानों की फसल को रिजेक्ट करने के बहाने खोजे जाते हैं। ऐसा कारोबारियों की मिलीभगत से होता है।

यह संकट एक बार फिर बताता है कि देश के किसान किस तरह से प्राकृतिक आपदाओं और संस्थागत गैरजिम्मेदारी के शिकार हैं। बेमौसम बरसात, सरकारी खरीद के कड़े मानक और मौकापरस्त व्यापारी सब मिलकर उनकी किस्मत में तब सेंध लगा रहे हैं, जब वे अपनी उपज से भारी उम्मीद बांध कर मंडियों में पहुंच रहे हैं। क्या फूड कॉरपोरेश और दूसरी सरकारी एजेंसियां खुद ही सुखाने का इंतजाम नहीं कर सकतीं? यही किसानों के लिए मजबूरी में उपज बेचने का कारण बनता है।

किसानों को ऐसी व्यवस्था की जरूरत है, जो एक तरफ तो मौसम की मार से उनकी रक्षा करे, दूसरी तरफ उनके शोषण को रोके। जब तक यह नहीं होता, मौसम की हर अति न सिर्फ फसलों के लिए मुसीबत का कारण बनेगी, बल्कि उसे उपजाने वाले किसानों के लिए परेशानी लेकर आएगी। ■

बिहार के चुनावी मौसम का पूर्वानुमान

›› पेज एक का शेष

वरिष्ठ पत्रकार अब्दुल कादिर का कहना है कि इंडिया ब्लॉक की रणनीति प्रतिनिधित्व के जरिये समावेशिता का संदेश देने की है।

बदलाव की चाह

यह चुनाव बिहार में असली बदलाव की चाहत का भी टेस्ट हो सकता है। जहां राजद नेता तेजस्वी यादव हर परिवार के लिए एक सरकारी नौकरी का वादा कर रहे हैं, नीतीश कुमार चुनाव के ऐन पहले महिलाओं को लुभाने की कोशिश कर रहे हैं। 29 अगस्त को महिला रोजगार योजना की घोषणा की गई और महिलाओं के बैंक खाते में सीधे 10,000 रुपये भेजना सबसे बड़ा आकर्षण है। दूसरी तरफ, हालांकि यह आलेख लिखते समय इंडिया ब्लॉक का घोषणापत्र जारी नहीं हुआ था, लेकिन ऐसी जानकारी आ रही है कि इसमें शहरी और ग्रामीण, दोनों इलाकों के ऐसे लोगों को जमीन देने का वादा किया गया है जिनके पास कोई जमीन नहीं है। इसके अलावा, प्रदेश की आबादी में करीब 36 फीसद की हिस्सेदारी रखने वाले ईबीसी समुदाय के लिए राज्य के निजी क्षेत्र और शैक्षणिक संस्थाओं में आरक्षण जैसी बड़ी पहल को भी घोषणापत्र में शामिल किए जाने की बात सामने आ रही है।

लेकिन हमें इंतजार करना होगा और यह देखना होगा कि क्या बिहार सच में बदलाव चाहता है। अगर आप 2020 के चुनाव का फैसला करने वाले 12,000 वोटों के मामूली अंतर को देखें, तो माना जा सकता है कि हां, बिहार के लोग बदलाव के लिए तैयार हैं।

सबसे बड़ा मुद्दा

हमें यह भी देखना होगा कि चुनाव आयोग ने और कौन-कौन से बुरे सरप्राइज छिपा रखे हैं? क्या अस्पष्ट और धोखेबाजी से भरी एसआईआर प्रक्रिया चलाकर आयोग अपने राजनीतिक आकाओं को फायदा पहुंचाने के सारे दांव खेल चुका है? हमने मसौदा मतदाता सूची में शक के आधार पर नाम हटाने, उसके बाद अंतिम सूची में बिना सबूत नाम जोड़ने और आखिरकार तकरीबन 76 लाख वयस्कों को सूची से बाहर किए जाने पर काफी कुछ लिखा है।

मतदाता सूची की 'सघन' पुनरीक्षण प्रक्रिया के बाद जो अंतिम सूची तैयार की गई है, उसमें तमिल, तेलुगु और कन्नड़ में रहस्यमयी एंट्री हैं, और कई पते हैशटैग और अजीब कैरेक्टर हैं। एक ही पते पर अब भी सैकड़ों वोटर रजिस्टर्ड हैं, जबकि चुनाव आयोग की अपनी रूल बुक कहती है कि एक ही पते पर 10 से ज्यादा वोटर होने पर उन्हें संदिग्ध मानकर उनका फिजिकल वेरिफिकेशन किया जाना चाहिए। चुनाव आयोग ने रिपोर्टर्स कलेक्टिव के इस आरोप का जवाब देने की भी जहमत नहीं उठाई कि उसने बिहार की मतदाता सूची की 'सफाई' के लिए 2018 से उसके पास उपलब्ध डी-डुप्लीकेशन सॉफ्टवेयर का इस्तेमाल क्यों नहीं किया।

यह मानने की काफी वजहें हैं कि मतदाता सूची साफ नहीं हैं। तो क्या यह सबसे बड़ा मुद्दा नहीं है? ■

राज्य 360° असम
दिसपुर

अंतर्कलह से संभावनाओं पर ग्रहण का खतरा

अहोम समुदाय में भाजपा से नाराजगी है। उसे लगने लगा है कि असम के राजनीतिक हालात में वह अलग-थलग पड़ गया है

सौरभ सेन

जिस समय असम प्रदेश भाजपा 10 अक्तूबर को डिब्रूगढ़ में 2026 के विधानसभा चुनावों की अपनी रणनीति तय करने में जुटी थी, उसी समय चार बार सांसद रह चुके पूर्व केन्द्रीय मंत्री और पूर्व प्रदेश अध्यक्ष राजेन गोहाईं ने पार्टी छोड़ने का ऐलान कर दिया।

उनके साथ 17 और भाजपा नेता और कार्यकर्ता भी चले गए, जिनमें बराक घाटी के पूर्व विधायक कार्तिक सेन सिन्हा भी शामिल हैं। गोहाईं अब तक किसी दूसरी पार्टी में शामिल नहीं हुए हैं, लेकिन कई दूसरे नेताओं और सैकड़ों कार्यकर्ताओं के कांग्रेस में शामिल होने की खबर है। गोहाईं का इस्तीफा पुराने और नए नेताओं के बीच तनाव, अंदरूनी मतभेद और भाजपा की प्रदेश इकाई के अंदर बढ़ते असंतोष को दिखाता है। पार्टी जिस तरह स्थानीय समुदायों और उनकी जायज मांगों के साथ पेश आ रही है और हिमंत बिस्वा सरमा के मुख्यमंत्री बनने के बाद से क्षेत्रीय भावना और असमिया हितों के साथ धोखा के आरोप जिस तरह व्यापक हो रहे हैं, उसे लेकर लोगों की चिंताएं साफ दिखने लगी हैं।

त्यागपत्र पार्टी से इस्तीफा देने वाले पूर्व असम प्रदेश भाजपा अध्यक्ष और पूर्व केन्द्रीय मंत्री राजेन गोहाईं।

'संडे नवजीवन' से बातचीत में गोहाईं ने कहा, 'प्रदेश भाजपा को दूसरी पार्टियों से आए नेता चला रहे हैं वैसी पार्टी में रहने का क्या मतलब है, जब वह जमीनी कार्यकर्ताओं और नेताओं को नजरअंदाज करे?' हालांकि उन्होंने बिस्वा सरमा का नाम नहीं लिया, जो 2015 में कांग्रेस छोड़कर भाजपा में आए और 2021 में सर्बानंद सोनोवाल की जगह मुख्यमंत्री बनाए गए, लेकिन उन्होंने भाजपा से अपनी नाराजगी के बारे में खुलकर बात की।

गोहाईं ने कहा, 'दिल्ली में कोई हमसे बात नहीं करता। मैंने ये मुद्दे (पार्टी के फैसले लेने की प्रक्रिया में नजरअंदाज किया जाना और उन्हें अलग-थलग छोड़ देना) उठाने की कोशिश की, लेकिन अमित शाह जैसे नेताओं से कोई जवाब नहीं आया। इससे उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता।' गोहाईं ने इस बात की भी जानकारी दी कि उन्हें दिल्ली में भाजपा के वरिष्ठ नेताओं से मिलने का समय भी नहीं दिया गया।

इस बीच, बिस्वा सरमा ने एक बार फिर अपने पसंदीदा विषय- असम में मुस्लिम घुसपैठियों की बढ़ती संख्या- का जिक्र किया है। असम के हालात को बेहद खराब करार देते हुए सरमा ने दावा किया कि अगली सेंसस रिपोर्ट से पता चल जाएगा कि राज्य की आबादी में मिया मुसलमानों की हिस्सेदारी 38 फीसद हो चुकी है। वह कहते हैं, 'अगर हमने पिछले 30 सालों में इस मुद्दे पर गंभीरता से काम किया होता, तो आज हालात इतने खराब नहीं होते'। इस तरह उन्होंने बड़ी सुविधा के साथ खुद को तो इस 'चूक' से बरी कर लिया, लेकिन अपने पूर्ववर्तियों को नहीं छोड़ा। गोहाईं का दावा है कि भाजपा की घुसपैठ रोकने में कोई दिलचस्पी नहीं है। वह तो जातीय समुदायों के दबदबे को कमजोर करने में लगी है। वह साफ-साफ कहते हैं कि असम की असली दुश्मन भाजपा है। गोहाईं ने नई दिल्ली पर यह भी आरोप लगाया कि वह परिसीमन के जरिये असम के मूल समुदायों को अपने हिसाब से ढालने की कोशिश को छिपाने के लिए घुसपैठ के डर को बढ़ा-चढ़ाकर बता रही है।

2023 के परिसीमन की वजह से नौगांव के मूल निवासी अहोम को आस-पास के विधानसभा क्षेत्रों में फैल जाना पड़ा। नौगांव लोकसभा सीट से जीतने वाले गोहाईं ने कहा, 'इससे चुनाव क्षेत्र पर अहोम का दबदबा कम हो गया है। अहोम समुदाय को लगता है कि उनकी पीठ में छुरा घोंपा गया है।' उन्होंने कहा कि अहोम राज्य के पॉलिटिकल पावर ग्रिड से कटे महसूस करते हैं, और इससे मध्य और ऊपरी असम में भाजपा की चुनावी किस्मत पर बुरा असर पड़ेगा। हालांकि, राज्य अब भी कांग्रेस और भाजपा के पक्ष में ध्रुवीकृत नहीं हुआ है। हाल ही में हुए बोडोलैंड टेरिटोरियल काउंसिल के चुनावों, जिसमें भाजपा और उसकी सहयोगी यूनाइटेड पीपुल्स पार्टी लिबरल (यूपीपीएल) को हग्रामा मोहिलरी के बोडोलैंड पीपुल्स फ्रंट ने बुरी तरह हराया, ने दिखाया कि क्षेत्रीय या मूल निवासियों के मुद्दों को उठाने वाली पार्टियों के लिए ही असम में जगह है। यह तब हुआ जब पहले असम गण परिषद (एजीपी) का प्रयोग विफल हो गया। गोहाईं का मानना है कि नेशनल पार्टियां क्षेत्रीय या इलाकाई अपेक्षाओं और नेताओं को लेकर ज्यादा संवेदनशील नहीं हैं। आगे के कदम के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने कहा, 'मैं क्षेत्रीय और स्थानीय समूहों से बात कर रहा हूं, लेकिन अब तक कोई फैसला नहीं लिया है।' इस बीच, उम्मीदों के मुताबिक ही भाजपा प्रवक्ताओं ने गोहाईं के जाने के असर को कम करके आंका है। उनका कहना है कि गोहाईं को पार्टी ने केन्द्रीय राज्यमंत्री समेत अन्य अहम जिम्मेदारी सौंपकर ठीक-ठाक 'इनाम' दिया। इसके साथ ही दावा करते हैं कि गोहाईं के इस्तीफे का चुनावों पर कोई खास असर नहीं पड़ने जा रहा, क्योंकि अब नौगांव लोकसभा सीट की सभी आठ विधानसभा सीटें भाजपा के पास हैं।

जहां बिस्वा सरमा घुसपैठ और धार्मिक ध्रुवीकरण पर आधारित नई दिल्ली के घिसे-पिटे नैरेटिव को आगे बढ़ा रहे हैं, वहीं लंबे समय तक आरएसएस में रहे प्रदेश भाजपा अध्यक्ष दिलीप सैकिया ने ज्यादा बारीक नजरिया अपनाया। सैकिया के मुताबिक, पार्टी का मुख्य फोकस सबको साथ लेकर चलने वाले विकास पर है। वह कहते हैं, 'हम पहले की तुलना में लोगों के लिए और ज्यादा काम करेंगे'। इसके साथ ही यह भी कहा कि संगठन के मुद्दों और अनुसूचित जनजाति की पहचान की मांगों पर गौर किया जाएगा, जिससे आदिवासी समूहों के साथ सुलह का संकेत मिलता है।

सैकिया का बयान राज्य में भाजपा के सामने आने वाली चुनौतियों को स्वीकार करने वाला हैः मतभेद, बिखरा हुआ फोकस, अंदरूनी कलह, नेताओं का पार्टी छोड़ना, असम के मूल निवासियों का एसटी दर्जे और छठी अनुसूची में शामिल करने की मांग को लेकर राज्य भर में आंदोलन, और बोडो और दूसरे जातीय समूहों का ताकत दिखाना। इस सूची में जुबिन गर्ग की रहस्यमयी मौत के बाद की तनावपूर्ण स्थिति को भी शामिल कर दें, जिसने असम के लोगों को एकजुट कर रखा है और निश्चित तौर पर भाजपा के लिए यह एक मुश्किल सफर होने वाला है। ■

सौरभ सेन कोलकाता में रहने वाले एक स्वतंत्र लेखक और टिप्पणीकार हैं।

प्रकाशकः पवन कुमार बंसल; संपादकः राजेश झा; पवन कुमार बंसल द्वारा दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली- 11002 की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रित। दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 और द्वारा आर. सी. मल्होत्रा, दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से मुद्रित।

'गंगा से पहले भी एक नदी थी, वैगई'

एक गांव अचानक तमिल अस्मिता और अभिव्यक्ति का ऐसा अनूठा केन्द्र बनकर उभरा कि राजनीति की धुरी बन गया

के.ए. शाजी

मदुरै के दक्षिणी किनारे पर जहां वैगई नदी सूखे मैदानों और केले के बागों से गुजरती है, वहीं तांबई आसमान के नीचे एक खामोश सभ्यता का हिस्सा कीझाड़ी भी है। इसके खपरैल वाले घर या संकरी गलियां किसी क्रांति का संकेत नहीं देते। लेकिन यह गांव चर्चा में है। इस गांव में पुरातत्व राजनीति का मुद्दा है और मिट्टी एक घोषणापत्र।

कीझाड़ी (या 'कीलाडी') ने धरती के प्रति एक नई तरह की आस्था दिखाई है। कक्षाओं की दीवारों पर बच्चे कुदाल और पुराने बर्तन उकेर रहे हैं। दुकानों पर छोटी-छोटी कलाकृतियां बिक रही हैं। स्थानीय लोग धरती के बारे में ऐसे बात करते हैं मानो वह उनकी पुरखा-पूर्वज हो। यह नई पहचान है। गर्व की जड़ें गहरी हैं, और बेचैनी भी- क्योंकि अतीत की यह खोज तमिलनाडु के आगामी चुनावों में एक नया रण बनने को तैयार है।

एक जमींदोज शहर

कीझाडी की कहानी एक जिज्ञासा से शुरू हुई। 1970 के दशक में एक स्थानीय स्कूल शिक्षक वी. बालासुब्रमण्यम ने देखा कि छात्र कुआं खोदते समय मिले मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े उनके पास लाकर रख रहे थे। उन्होंने यह सोचकर उन्हें सुरक्षित कर लिया कि शायद वे "किसी ऐसी सभ्यता की निशानी हैं जो तब यहां रही होगी, जब मदुरै अभी अपनी मंजिलें चढ़ना शुरू ही कर रहा था।" चार दशक बाद जब भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (एएसआई) ने वैगई घाटी का सर्वेक्षण करना चाहा, यही स्मृतियां थीं जिनके सहारे टीम मदुरै के किनारे स्थित इस टीले तक पहुंची।

पुरातत्वविद के. अमरनाथ रामकृष्ण के नेतृत्व में 2014 में खाइयों की शुरुआती खुदाई हुईं। चंद महीनों में ही कीझाड़ी की धरती पर एक सुनियोजित बस्ती के प्रमाण सामने आए- ईंट के घर, घुमावदार कुएं (रिंग कुएं), कार्यशालाएं, भट्टियां, मनके, औजार और तमिल-ब्राह्मी लिपि में अंकित बर्तन आदि। कार्बन डेटिंग हुई तो इनकी कड़ियां 580 ईसा पूर्व तक जुड़ती चली गईं, जो एक शहरी और साक्षर संस्कृति का पता तो दे ही रही थीं, यह भी कि यह मौर्यों या वैदिक युग के दक्षिण भारत पहुंचने से बहुत पहले फल-फूल रही थी।

यह खोज भारतीय सभ्यता की उत्तर-केन्द्रित समयरेखा को चुनौती दे रही थी। इससे पता चलता है कि मौजूदा तमिलों के पूर्वज, वैगई घाटी के लोग शहर बसाते, अपनी लिपि में लिखते थे, बड़े स्तर पर व्यापार करते और संस्कृत के प्रभाव से मुक्त होकर नागरिक जीवन विकसित करते थे।

तमिलनाडु की पहचान लंबे समय से भाषाई अस्मिता और उसकी तर्कवादी राजनीति से रही है। कीझाड़ी ने उस सातत्य को प्रमाण के रूप में, द्रविड़ कल्पना के एक वैज्ञानिक दावे के रूप में प्रस्तुत किया है।

मदुरै के सांसद सु. वेंकटेशन ने संडे नवजीवन को बताया कि कीझाडी की खुदाई ने "बिना किसी शक-सुबहा के साबित कर दिया है कि तमिल समाज किसी भी प्राचीन सभ्यता के बराबर शहरी परिष्कार हासिल कर चुका था।"

जब एएसआई ने 2017 में अचानक रामकृष्ण का तबादला कर दिया और खुदाई धीमी कर दी, उसका यह कदम उस तमिल गौरव को कुंद करने की एक राजनीतिक कोशिश के रूप में देखा गया। वेंकटेशन कहते हैं, "ऐसी खोजों के बाद काम रोकने का औचित्य नहीं था। ऐसा लगा मानो वे डर रहे हों कि यह मिट्टी कोई राज उजागर न कर दे।" तमिलनाडु सरकार ने तत्काल हस्तक्षेप किया। पुरातत्व विभाग ने काम संभाला, खुदाई फिर से शुरू हुई और विदेश में कार्बन डेटिंग का परीक्षण करवाया गया। नतीजे कीझाड़ी की प्राचीनता की पुष्टि कर रहे थे जिसे स्वाभाविक ही राज्य ने सम्मान की बात माना।

मुख्यमंत्री एम.के. स्टालिन ने इसे 'एक सांस्कृतिक सत्य का वैज्ञानिक सत्यापन' बताया और कहा कि साबित होता है कि तमिल सभ्यता उत्तर भारत की वैदिक व्यवस्था से बहुत पहले ही तार्किक, साक्षर और आधुनिक थी। मदुरै में एक सांस्कृतिक सम्मेलन में उन्होंने कहा, "कीझाड़ी दर्शाता है कि हमारे पूर्वज विचारक और सर्जक थे जो तर्क में विश्वास करते थे। यह कोई पौराणिक कथा नहीं, बल्कि पहचान है।"

यह रूपरेखा अब व्याख्यान कक्षों से राजनीतिक मंचों तक पहुंच चुकी है, जहां कीझाड़ी हिन्दुत्व राष्ट्रवाद के लिए एक जीवंत चुनौती के रूप में मौजूद है, जिसे तमिलनाडु के कुछ लोग ऐसी आयातित वैचारिक शक्ति के रूप में देखते हैं जो इतिहास की विविधता को एक सांस्कृतिक आख्यान में समाहित करने पर आमादा है। एएसआई द्वारा पूरी रिपोर्ट सामने लाने में आनाकानी, प्रमुख अधिकारियों का तबादला और रिपोर्ट जारी करने में नौकरशाही की हीलाहवाली से संदेह और गहरा गया। तमिलनाडु के वित्त एवं मानव संसाधन प्रबंधन मंत्री और वरिष्ठ डीएमके नेता थंगम थेन्नारासु ने संडे नवजीवन को बताया कि "असली समस्या विज्ञान नहीं, राजनीति है।" "पहले तो वे बोले कि यहां कुछ है ही नहीं। फिर अधिकारी को हटा दिया, धनराशि रोक दी और रिपोर्ट में देरी की। सबूत उनकी एक वैदिक सभ्यता वाली कहानी को चुनौती देने लगे, तो उन्होंने उसे आधा-अधूरा (बेनतीजा) बता दिया।" उन्होंने कहा कि केन्द्र की हिचकिचाहट कीझाड़ी के प्रतीक के भय से उपजी थी।

विशिष्टता कभी मदुरै बस मार्ग पर एक अनाम पड़ाव रहा कीझाड़ी अब द्रविड़ राजनीति के केन्द्र में है। कीझाड़ी संग्रहालय (नीचे), जिसकी अपनी खास पहचान है।

शुरुआती खुदाई का नेतृत्व करने वाले पुरातत्वविद् रामकृष्ण आज भी अपने निष्कर्षों के साथ पूरे विश्वास से खड़े हैं। उन्होंने एक बार कहा था, "आप व्याकरण सुधार सकते हैं, इतिहास नहीं। अगर मैं अवधारणा बदल दूं, तो मैं अपराधी बन जाऊंगा।"

कीझाड़ी वालों ने अपनी इस नई-नई प्रसिद्धि को जिस तरह अपनाया है, उसमें आश्चर्य भी है और स्वामित्व का गर्व भी। कलाकृतियों की तस्वीरों से सजे एक कार्यालय में बैठे पंचायत अध्यक्ष ई. वेंकट सुब्रमण्यन कहते हैं, "कभी हम मदुरै बस रूट पर एक अनाम पड़ाव हुआ करते थे। आज दुनिया हमारे पास आती है। हमारे बच्चे इस जमीन को अलग नजरिये से देखते हैं। वे मिट्टी में गौरव देखते हैं।" थोड़ी ही दूरी पर पांच एकड़ के परिसर में निर्मित नया कीझाड़ी संग्रहालय है, जिसमें 30,000 से ज्यादा कलाकृतियां प्रदर्शित हैं। अंदर बर्तनों और मोतियों के शोकेस के इर्दगिर्द इकट्ठा स्कूली बच्चों को गाइड बता रहे हैं कि किस तरह मिट्टी की हर परत तमिल जीवन के एक अलग युग को दर्शाती है। एक छात्र एक खुदे हुए बर्तन के टुकड़े की ओर इशारा करते हुए दूसरे से फुसफुसाते हुए कहता है- "ये अक्षर हमारे हैं"।

> कीझाड़ी की स्थिर और शांत जमीन सांस्कृतिक और राजनीतिक टकराव का नया केन्द्र है। चुनाव प्रचार की जमीन पर कीझाड़ी भी आज भाषा या सामाजिक न्याय जितना ही प्रभावशाली है। द्रमुक के लिए यह एक ढाल भी है और तलवार भी

वैगई सभ्यता

2019 तक, कीझाड़ी के निष्कर्षों को वैगई घाटी में शिवकलाई, कोंथगई और अगरम में हुई इसी तरह की खोजों से बल मिला, जिन्हें मिलाकर विद्वानों ने अब वैगई सभ्यता समूह नाम दिया है। इन स्थलों की निरंतरता उस तर्क को पुष्ट करती है कि यहां एक विशिष्ट तमिल नगरीय संस्कृति स्वतंत्र रूप से फली-फूली थी। द्रविड़ आंदोलन के लिए कीझाड़ी ने पेरियार और अन्नादुरई जैसे नेताओं द्वारा लंबे समय से प्रचारित किए गए सिद्धांतों का अनुभवजन्य समर्थन किया कि तमिल समाज तो ब्राह्मणवाद और जाति पदानुक्रम के जड़ें जमाने से पहले ही तर्कसंगत और समतावादी था।

डीएमके सरकार ने जल्द ही कीझाड़ी को अपनी सांस्कृतिक नीति में शामिल कर लिया। अब पाठ्यपुस्तकों में उत्खनन पर अध्याय हैं, अध्ययन के लिए स्कूली दौरों को सब्सिडी मिलती है और मदुरै में जगह-जगह सार्वजनिक होर्डिंग्स पर लिखा मिलता है: 'गंगा से पहले, वैगई थी'।

पुरातत्व के रास्ते तमिल इतिहास को फिर से केन्द्र में लाने का यह कदम अगले साल प्रस्तावित विधानसभा चुनावों के पूर्व राज्य में वैचारिक रणभूमि को नया आकार दे रहा है। कीझाड़ी की स्थिर और शांत जमीन सांस्कृतिक और राजनीतिक टकराव का नया केन्द्र बन रही है। चुनाव प्रचार की मूल जमीन पर कीझाड़ी भी आज भाषा या सामाजिक न्याय जितना ही प्रभावशाली मुद्दा है। द्रमुक के लिए यह एक ढाल भी है और तलवार भी।

राजनीतिक विश्लेषक वी. अरुलराज ने संडे नवजीवन को बताया कि कीझाड़ी में पुरातत्व अब एक विचारधारा में तब्दील हो चुका है: "भाजपा आस्था पर अपना चुनाव प्रचार करती है, डीएमके सबूतों पर। जब कोई कुदाल 2,600 साल पुराने तमिल शहर को खोदकर निकालती है, तो वह विज्ञान और राजनीतिक हथियार दोनों होता है।"

गर्व से भरे इस दावे पर राज्य भाजपा की प्रतिक्रिया अब तक सतर्क रही है। पार्टी के नेता जानते हैं कि यह कहानी कितनी गहरी जड़ों वाली है। जनसभाओं में, उनके नेता कीझाड़ी की तारीफ भारत की साझी विरासत के रूप में करते हैं, और वैदिक वर्चस्ववादी कल्पनाओं के लिए इसकी चुनौती को नजरअंदाज करते हैं। हालांकि निजी तौर पर वह भी मानते हैं कि इस नई तलाश ने तमिलनाडु में हिन्दुत्व की पटकथा को थोड़ा जटिल बना दिया है।

दोपहर ढल रही है और सूरज की किरणों ने कीझाड़ी की लाल मिट्टी को सोने में बदल दिया है। संग्रहालय के बाहर स्कूल बसों की कतारें हैं और मजदूर खुली खाइयों को तिरपाल से ढकने लगे हैं। शाम ढलने के साथ संग्रहालय के रास्ते में दीये जलने लगे हैं। उनकी रोशनी उन बच्चों के चेहरों पर पड़ रही है जिनके हाथों में छोटे-छोटे झंडे हैं, जिन पर लिखा है, "तमिल सभ्यता जीवित है।" बाड़ों के पार वैगई नदी मद्धम रोशनी में भी चमक रही है, अपनी गाद के साथ, जिसमें जाने कितनी और कहानियां अभी छिपी हुई हैं। ■

छलावा भर ही हैं ग्रीन पटाखे

इनमें सामान्य पटाखों वाले रसायनों की मात्रा कम होती है या इनमें कम हानिकारक यौगिकों का इस्तेमाल होता है। यह आधा-अधूरा समाधान

पंकज चतुर्वेदी

फोटो: विपिन

वास्तविकता कोर्ट ने पटाखों की बिक्री पर कड़ी निगरानी को कहा है। पर बाजार में पारंपरिक पटाखे भी बिक रहे।

उच्चतम न्यायालय ने दिल्ली-एनसीआर में इस बार दीपावली के दौरान पांच दिनों के लिए ग्रीन क्रैकर की आतिशबाजी की अनुमति दी है। यह गुड़ खाकर गुलगुले से परहेज करने से अधिक कुछ नहीं है। ग्रीन पटाखे पारंपरिक पटाखों से, बस, कुछ कम हानिकारक भर हैं। यह दिखावटी सुधार भर है, असली समाधान नहीं। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रशासन रस्मी जांच-पड़ताल ही कर पाता है और ग्रीन पटाखों के नाम पर अधिकतर लेबल लगाकर पारंपरिक पटाखे ही बेचे जाते हैं। कई इलाकों में अभी ही सामान्य पटाखे ही बेचे जाने की खबरें मीडिया में आ ही रही हैं।

वैसे, दीपावली पर पटाखे छुड़ाने की बात को परंपरा और संस्कृति से जोड़ने वाले लोग भी यह नहीं बता पाते कि आखिर, इसकी शुरुआत कब हुई थी। किसी के भी स्वागत में दीपमालाएं सजाने और लंबे-लंबे बांसों पर कंदील जलाने के उल्लेख तो मिलते हैं, पर आतिशबाजी के प्रमाण नहीं मिलते। फिर भी, इसे संस्कृति तक से जोड़ दिया गया है।

ग्रीन पटाखे नाम के ही ग्रीन होते हैं। सामान्य पटाखों में बैरियम नाइट्रेट, सल्फर, एल्युमिनियम और पोटेशियम नाइट्रेट जैसे रसायन होते हैं जो जलने पर जहरीली गैसें छोड़ते हैं। ग्रीन पटाखों में इन्हीं रसायनों की मात्रा कम रखी जाती है या कुछ जगह उनके स्थान पर कम हानिकारक यौगिकों का इस्तेमाल किया जाता है। इन्हें भारत सरकार की वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान सीएसआईआर (वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद) और नीरी (राष्ट्रीय पर्यावरण इंजीनियरिंग अनुसंधान संस्थान) ने विकसित किया है, ताकि पारंपरिक पटाखों से 30 प्रतिशत तक कम प्रदूषण हो।

ग्रीन पटाखे तीन किस्म के विकसित किए गए: पहली है 'स्वास' या 'सेफ वाटर रिलीजर'। ये जलने पर जल वाष्प छोड़ते हैं जो धूल के कणों को दबाने में मदद करते हैं। इसमें सल्फर और पोटेशियम नाइट्रेट का उपयोग नहीं होता। 'स्टार' को 'सेफ थरमाईट क्रैकर' कहा जाता है। इनमें पोटेशियम नाइट्रेट और सल्फर नहीं होता। ये कम शोर के साथ ही पीएम कणों को कम उत्सर्जित करते हैं। तीसरा है 'सफल', यानी 'सेफ मिनिमम एल्युमियम' जिसमें पारंपरिक पटाखों में इस्तेमाल एल्युमीनियम की मात्रा को काफी कम रखा जाता है या मैग्नीशियम जैसे विकल्प का उपयोग होता है।

चूंकि इस तरह की आतिशबाजी को बनाना थोड़ा महंगा होता है, सो अधिकांशतः बाजार में महज लेबल लगाकर पारंपरिक आतिशबाजी की ही बिक्री होती है। साल 2018 में सुप्रीम कोर्ट ने पारंपरिक पटाखों पर रोक लगाकर केवल ग्रीन पटाखों को अनुमति दी थी। तभी से बाजार में इस किस्म के पटाखे बिक रहे हैं। लेकिन सीएसआईआर और नीरी की रिपोर्ट के मुताबिक, 2023 में बिके करीब 70 प्रतिशत ग्रीन पटाखे असली नहीं थे। यानी नीति बनी, पर निगरानी नहीं हुई। ग्रीन पटाखों में भले बैरियम न हो, लेकिन अमोनियम और एल्युमिनियम यौगिकों के जलने से निकलने वाले सूक्ष्म धात्विक कण यथावत हैं। ये कण शरीर के भीतर जाकर फेफड़ों में सूजन, सिरदर्द और सांस लेने में तकलीफ जैसी समस्याएं बढ़ाते हैं। ग्रीन पटाखे में पोटैशियम नाइट्रेट, अमोनियम नाइट्रेट और एल्युमिनियम पाउडर का इस्तेमाल होता है और इनके जलने से भी नाइट्रोजन ऑक्साइड और एल्युमिनियम ऑक्साइड उत्सर्जित होते हैं जो फेफड़ों, आंखों और त्वचा के लिए हानिकारक हैं। अमोनियम नाइट्रेट कई देशों में विस्फोटक पदार्थ के रूप में प्रतिबंधित है।

> ग्रीन पटाखे थोड़े महंगे होते हैं, सो अधिकांशतः बाजार में महज लेबल लगाकर पारंपरिक आतिशबाजी की ही बिक्री होती है। साल 2018 में सुप्रीम कोर्ट ने पारंपरिक पटाखों पर रोक लगाकर केवल ग्रीन पटाखों को अनुमति दी थी। तभी से बाजार में इस किस्म के पटाखे बिक रहे हैं

पटाखे हों या कोई भी जलने की प्रक्रिया, उसमें कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य गैसों का उत्सर्जन होता है। ग्रीन पटाखों में भी दहन के लिए जिस सामग्री का इस्तेमाल होता है, उससे कार्बन डाइऑक्साइड और नाइट्रस ऑक्साइड जैसी ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जित होती ही है। हां, यह पारंपरिक आतिशबाजी से कोई 30 फीसदी कम जरूर है।

दिल्ली, चेन्नई और हैदराबाद में पिछले कुछ वर्षों में हुए परीक्षणों में पाया गया कि ग्रीन पटाखे भी पीएम 2.5 और पीएम 10 कणों का स्तर 20 से 25 प्रतिशत बढ़ा देते हैं। दीवाली की रात और अगले दिन शहरों की हवा में धूल, धुआं और गैसें वैसे ही घुटन पैदा करती हैं जैसी सामान्य पटाखों से होती है। ग्रीन पटाखों से निकलने वाला धुआं अब भी फेफड़ों और आंखों के लिए हानिकारक है। भले ही ग्रीन पटाखे प्रदूषण में थोड़ी कमी लाते हों, लेकिन शोर का आतंक कम नहीं होता । इनका शोर 110 से 125 डेसिबल तक दर्ज किया गया है जबकि कानूनी सीमा 90 डेसिबल है। बच्चों और बुजुर्गों के लिए इसका शोर भी उतना ही हानिकारक है जितना पुराने पटाखों का था।

कई पर्यावरण विशेषज्ञों ने 'ग्रीन क्रैकर्स' की अवधारणा को ही विरोधाभासी शब्द कहा है। उनका तर्क है कि ग्रीन पटाखों से प्रदूषण कम तो होता है लेकिन अगर वे बड़ी संख्या में जलाए जाते हैं, तो वायु की गुणवत्ता पर कोई महत्वपूर्ण फर्क नहीं पड़ता। भले ही ग्रीन पटाखे कुछ हानिकारक गैसों का उत्सर्जन कम करते हैं, फिर भी वे नुकसानदेह अल्ट्राफाइन कण और गैसें छोड़ते हैं जो उन्हें 'सुरक्षित' के बजाय 'कम बुरा' भर बनाते हैं। नीरी के नमूनों की रासायनिक जांच में पाया गया कि ग्रीन पटाखों से निकलने वाले धुएं में सोडियम, एल्युमिनियम, मैग्नीशियम, स्ट्रॉन्शियम, और कॉपर ऑक्साइड जैसे धातु कण मौजूद हैं। ये धातुएं सांस के जरिये फेफड़ों में जाकर ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस और डीएनए क्षति करती हैं। एक किलो ग्रीन पटाखे के जलने से कोई डेढ़ किलो कार्बन डाइऑक्साइड, 200 ग्राम नाइट्रस ऑक्साइड और अमोनिया और क्लोराइड गैसें निकलती हैं जो हवा में जाकर एसिड रेन (अम्ल वर्षा) की संभावना बढ़ा देती हैं, यानी 'ग्रीन' होने के बावजूद ये गैसें जलवायु परिवर्तन में भूमिका निभाती हैं। इसलिए ग्रीन पटाखे दिखावटी सुधार हैं, असली समाधान नहीं।

पिछले साल ही लाख पाबंदी के बावजूद दिल्ली में 31 अक्तूबर, यानी दीपावली के दिन शाम छह बजे एक्यूआई (एयर क्वालिटी इंडेक्स) 300 के पार था; रात दस बजे यह 330 और आधी रात को अलग-अलग स्थानों पर 550 से 806 तक रहा। गाजियाबाद शहर में यह 893 और गाजियाबाद के एक हिस्से- वैशाली में यह 911 था जिसे आपातकालीन स्थिति कहा जाता है। लोकल सर्किल नामक एक डिजिटल प्लेटफॉर्म ने उसी वक्त 21 हजार लोगों के सर्वे के बाद आंकड़े जारी किए थे कि उस रात दिल्ली-एनसीआर में 69 प्रतिशत लोगों को गले में खराश या खांसी की दिक्कत हुई जबकि आंखों में जलन की शिकायत करने वाले 62 फीसदी लोग थे। सांस लेने के दिक्कत या अस्थमा के आंकड़े 34 फीसदी पार थे।

एम्स के पूर्व लंग्स स्पेशलिस्ट, पीएसआरआई इंस्टिट्यूट ऑफ पल्मोनरी, क्रिटिकल केयर एंड स्लीप मेडिसिन के चेयरमैन और ग्लोबल एयर पॉल्यूशन एंड हेल्थ टेक्निकल एडवाइजरी ग्रुप के सदस्य प्रो. (डॉ.) जी.सी. खिलनानी के अनुसार, एक आतिशबाजी से कोई साढ़े चार सौ सिगरेट के बराबर धुआं निकलता है। तीन मिनट के लिए जलने वाली सांप वाली गोली 64,500 पीएम 2.5, छह मिनट जलने वाली एक हजार पटाखों की लड़ी से 38,450 पीएम 2.5 निकलता है। सबसे लोकप्रिय फुलझड़ी दो मिनट में रोशनी कर 10,390 सूक्ष्म जहरीले कण उत्सर्जित करती है।

क्या परंपरा और पर्व के नाम पर अपने ही समाज को इस तरह बीमार करना किसी का उद्देश्य हो सकता है? ■

एआई में नैतिक सोच की कमी परेशान करने वाली

डीपफेक और एआई-जनित नकली संस्करणों के इस दौर में व्यक्तित्व के अधिकारों की बारीकियों की किसी को परवाह नहीं

लॉरेंस लियांग

अंत का खुलासा मत करो। यही एकमात्र चीज है जो हमारे हाथ में है। अल्फ्रेड हिचकॉक ने 1960 की अपनी ऐतिहासिक फिल्म 'साइको' के लिए चतुराई भरी जो मार्केटिंग रणनीति तैयार की उसके मूल में यही शब्द थे और जो अपनी कला के बचाव के लिए गढ़ी गई दुनिया की शायद पहली 'सुरक्षा नीति' थी। शायद पहला कारगर स्पॉइलर एलर्ट भी! अब 65 साल बाद जब हम एआई (कृतिम बुद्धिमत्ता) से तैयार डीपफेक के दौर में हैं, तो पाते हैं कि फिल्म निर्माता और दर्शक को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि फिल्म का एक खास अंत ही हो। आनंद एल. राय की दुखांत-रोमानी फिल्म 'रांझणा' जब इस साल दोबारा रिलीज हुई, तो अंत पूरी तरह बदला हुआ था और जो एआई रचित था। मूल फिल्म में जहां कुंदन (धनुष अभिनीत) गोलियों से घायल होकर दम तोड़ देता है, वहीं एआई रचित ताजा संस्करण में फिल्म के सुखांत के साथ कुंदन बच जाता है, जिसे अस्पताल के बिस्तर पर होश में आते दिखाया गया है। अगर यह एआई के भ्रम का नतीजा होता, तो यह वैकल्पिक अंत मनोरंजक हो सकता था, लेकिन यहां तो यह कुछ भयावह लगने लगता है, खासकर तब, जब निर्देशक और अभिनेता, दोनों ने इस बदलाव पर सहमत न हों और निर्माता के खिलाफ उनकी सहमति के बिना इस संस्करण को बनाने और रिलीज करने के लिए कानूनी कार्रवाई पर विचार कर रहे हों।

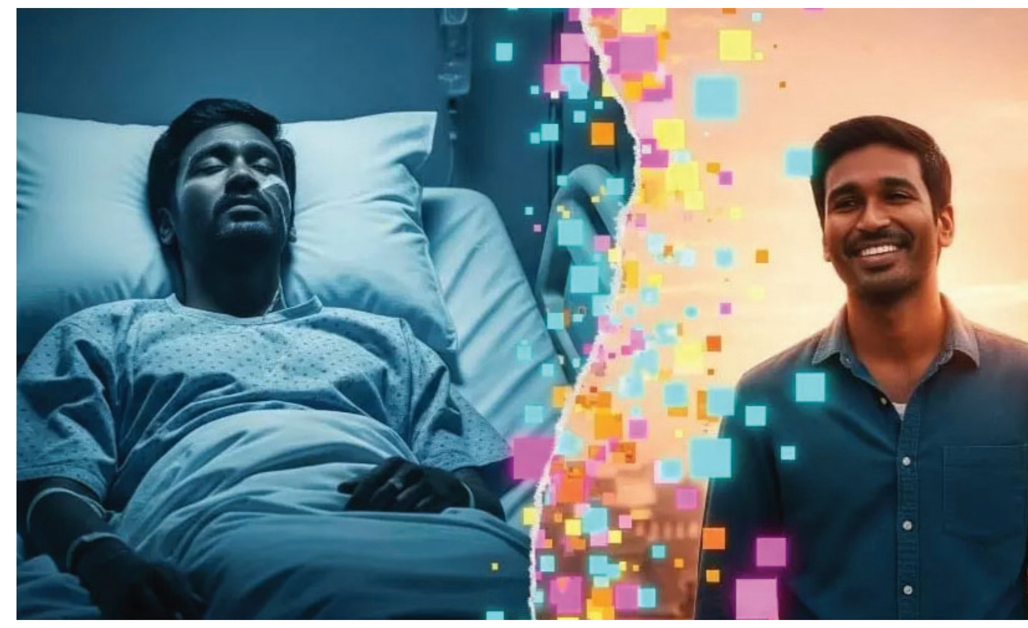

परिवर्तित आनंद एल. राय की फिल्म रांझणा दोबारा रिलीज हुई, तो अंत पूरी तरह बदला हुआ था। यह एआई रचित था।

उनकी आपत्तियों के दो आयाम हैं। कॉपीराइट अधिनियम विशेष तरह के अधिकार (नैतिक अधिकार) को मान्यता देता है और यह अधिकार स्वामित्व हस्तांतरण के बाद भी बना रहता है। इसे 'कृति की अखंडता का अधिकार' जैसी अस्पष्ट अभिव्यक्ति की तुलना में कहीं ज्यादा स्पष्ट 'पितृत्व का अधिकार' या किसी रचना के लेखक के रूप में पहचाने जाने का अधिकार (प्रकाशक मेरी पुस्तक का कॉपीराइट तो रख सकता है, लेकिन पुस्तक के लेखक के तौर पर किसी और का नाम नहीं दे सकता) कह सकते हैं।

'अखंडता का अधिकार' किसी कृति की नैतिक सुसंगतता को इस तरह विकृत किए जाने, बदले जाने से सुरक्षित करता है जिससे लेखक के सम्मान या प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचती हो। यानी, आप वह खुशकिस्मत तो हो सकते हैं जो हुसैन की किसी पेंटिंग का मालिक है, लेकिन महज इसलिए आपको उस पेंटिंग को नष्ट या विकृत करके चित्रकार की उसकी कृति पर नैतिक अधिकारों के उल्लंघन का अधिकार नहीं मिल जाता। इस आधार पर, ऐसा लगता है कि आनंद एल. राय का 'रांझणा' के एआई जनित अंत के खिलाफ सीधा दावा बनता है।

लेकिन फिर धनुष का क्या? वह इस फिल्म में अभिनेता है, लेकिन उसका कोई कॉपी राइट अधिकार नहीं। हालांकि परफॉर्मर्स को भी कुछ खास तरह के अधिकार हासिल हैं, लेकिन यह सवाल कि क्या परफॉर्मर्स को अपनी परफॉर्मेंस पर नैतिक अधिकार का दावा करने का हक है, कहीं ज्यादा पेचीदा मामला है। पिछले कुछ सालों में हमने ऐसे कई मामले देखे हैं जब सेलिब्रिटीज ने एआई कंपनियों (जो बिना अनुमति डीपफेक के जरिये उनका हमशक्ल बनाती हैं या किसी गायक की आवाज और शैली की नकल के लिए भाषा के किसी बड़े मॉडल का इस्तेमाल करती हैं) द्वारा गलत इस्तेमाल के खिलाफ अपने 'पर्सनैलिटी के अधिकार' की रक्षा के लिए कोर्ट का दरवाजा खटखटाया। अमिताभ बच्चन, उनके बेटे अभिषेक और बहू ऐश्वर्या से लेकर रजनीकांत और अरिजीत सिंह तक, कई सेलिब्रिटी इसी आधार पर एआई से बनी नकल के खिलाफ कोर्ट से राहत पाने में सफल रहे हैं।

अवधारणा की दृष्टि से 'व्यक्तित्व का अधिकार' एक दिलचस्प अधिकार है क्योंकि यह बौद्धिक संपदा सिद्धांत के भीतर प्रायः परस्पर टकराने वाली विविध दार्शनिक परंपराओं को भी एक साथ लाने का काम करता है। कॉपीराइट में मोटे तौर पर दो सिद्धांत हैं। एक, एंग्लो-सैक्सन मॉडल जिसके बेहतरीन उदाहरण हैं जॉन लॉक। यह प्रोत्साहन के आर्थिक तर्क पर जोर देता है जो कहता है कि अगर अमूर्त चीजों के मामले में विशिष्ट अधिकार नहीं हुआ तो कुछ भी नया बनाने की प्रेरणा नहीं बचेगी। यह सिद्धांत मुख्यतः आर्थिक प्रकृति का है और आईपी को प्रॉपर्टी राइट के तौर पर देखता है। दूसरा है, यूरोपीय सिद्धांत जो इमैनुएल कांट से प्रेरणा लेते हुए रचनाकार के अमूर्त व्यक्तित्व के महत्व को स्वीकारता है और कॉपीराइट को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में सही ठहराता है जो रचनाकार की पहचान की स्वायत्तता की रक्षक है, और आईपी को रचनाकार के अधिकार के रूप में देखता है।

'व्यक्तित्व का अधिकार' इन दो सिद्धांतों के बीच अजीब तरह से फंसा हुआ है। यह मुख्य रूप से व्यक्तित्व स्वायत्तता की कांटवादी परंपरा से लिया गया है और निजता के अधिकार का विस्तार करता है। एक तरफ तो तकनीकी तौर पर यह हर व्यक्ति के लिए उपलब्ध है और इसका मकसद किसी व्यक्ति की पहचान की अखंडता की रक्षा करना है। वहीं, कानूनी अधिकार के तौर पर इसका इस्तेमाल सिर्फ वही व्यक्ति कर सकता है जिसकी पहचान की कोई व्यावसायिक कीमत हो यानी कोई सेलिब्रिटी।

यह अधिकार मुख्यतः सेलिब्रिटी संस्कृति के वैश्विक उभार, मीडिया के असर और उन्नत डिजिटल तकनीक आधारित सतत दुरुपयोग से बढ़ा है। इस अधिकार का मानक औचित्य कई विरोधाभासों पर आधारित है- एक विचार यह है कि 'पहचान' एक ऐसी चीज है जिसे व्यक्ति विशेष से अलग नहीं किया जा सकता, भले ही उसका कानूनी दर्जा किसी की पहचान को 'उत्पाद' बनाने की क्षमता पर टिका हो। बेशक यह व्यावसायिक तौर पर किसी सेलिब्रिटी के पब्लिक स्टेटस से जुड़ा हो, लेकिन इसके मूल में निजता का अधिकार ही है।

> किसी कृति का अर्थ क्या है, इसकी व्याख्या पाठक और दर्शक अपनी-अपनी तरह से करने के साथ उस पर दावा भी जताते रहे हैं, लेकिन एआई से तैयार अलग अंत से हमें जो बेचैनी महसूस होती है, वह रचनात्मक व्याख्या से बिल्कुल अलग है

एआई के इस दौर में व्यक्तित्व के अधिकार से जुड़े विरोधाभासों को हम कैसे देखें? अगर सेलिब्रिटी के आर्थिक हितों के सवाल से आगे बढ़कर यह पूछा जाए कि क्या आम दर्शक के नजरिये से भी इस अधिकार का कोई आयाम है, तो कैसा परिप्रेक्ष्य सामने आएगा? एक अहम सवाल यह भी है कि ऐसे समय में इंसान होने का क्या मतलब रह गया है, जब मशीनों ने ऐसे तमाम कामों में महारत हासिल कर ली है, जिन्हें हम इंसान बड़े घमंड से अपने लिए खास बताया करते थे, यानी- भाषा, बुद्धिमानी से सोचने और रचनात्मक क्षमता तक।

इस सवाल का एक रूप सिनेमा में दिखने वाले एक काल्पनिक परफॉर्मेंस से भावनात्मक तौर पर जुड़ने की हमारी काबिलियत के हैरान करने वाले अनुभव में दिखता है। यह दर्शन और सौंदर्यबोध का एक शाश्वत प्रश्न है जो कला की उस गहरी ताकत को दिखाता है जिससे एक ऐसी भावनात्मक सच्चाई गढ़ी जा सकती है जो असल घटनाओं से ज्यादा असली लगे। एक बढ़िया परफॉर्मेंस वह होती है जिसमें हम यह जानते हुए भी उससे भावनात्मक रूप से जुड़ जाते हैं कि यह असलियत नहीं। यहां 'आनंद' में राजेश खन्ना या हैरी पॉटर सीरीज में डंबलडोर की मौत को याद कर सकते हैं।

किसी कृति का अर्थ क्या है, इसकी व्याख्या पाठक और दर्शक हमेशा से अपनी-अपनी तरह से करने के साथ ही उस व्याख्या पर दावा भी जताते रहे हैं, लेकिन एआई से तैयार अलग अंत से हमें जो बेचैनी महसूस होती है, वह रचनात्मक व्याख्या से बिल्कुल अलग है। क्या हमारी चिंता सिर्फ मूल अनुभव में हेरफेर को लेकर है? 'ब्लेड रनर' या 'शोले' जैसी मशहूर फिल्मों के लिए 'डायरेक्टर कट' का होना इस दावे को गलत साबित करता है। लेकिन ऑनलाइन दुनिया में डिजिटल हेरफेर, यानी मशहूर फिल्मों के एआई रचित तमाम दिलचस्प और अक्सर परेशान करने वाले संस्करणों (शोले का ऐसा ठाकुर जिसके हाथ साबुत हों वगैरह) के ढेरों उदाहरण मिल जाएंगे।

शीत युद्ध के दौरान, रूस और अमेरिका की सेंसरशिप व्यवस्थाओं के बारे में कहा जाता था कि रूस में कुछ नहीं चलता क्योंकि वहां सब कुछ मायने रखता है, जबकि अमेरिका में सब कुछ चल जाता है क्योंकि वहां कुछ भी मायने नहीं रखता। ऐसा लगता है कि हमारी परेशानी फिल्म के दूसरे संस्करण से नहीं, बल्कि बनाने के तरीके से जुड़ी है। एआई में इंसानी इरादे, हमदर्दी और नैतिक सोच की कमी हमें परेशान करती है। हम कह सकते हैं कि आदित्य चोपड़ा के लिए मायने यह रखता है कि डीडीएलजे के क्लाइमेक्स में अमरीश पुरी काजोल का हाथ छोड़ दें, ताकि वह आजादी से अपनी जिंदगी जी सके; हमारे लिए यह मायने रखता है कि शोले में जय अपने दोस्त वीरू के लिए जान दे देता है, लेकिन क्या यह एआई के लिए भी कोई मायने रखता है और क्या यह आज के समय में किसी काम की ईमानदारी का मुख्य पैमाना हो सकता है? ■

लॉरेंस लियांग वकील और शिक्षाविद हैं। उन्होंने आईपीआर पर विषद कार्य किया है।

क्या हम हिमालय के विनाश को बर्दाश्त कर सकते हैं?

हिमालय की रक्षा को केन्द्र और राज्यों की साझा जिम्मेदारी के तौर पर देखा जाना चाहिए, न कि इसे केवल पर्वतीय राज्यों की चिंता मान लेना चाहिए

आपदा सोलन जिले के शामती में भूस्खलन से क्षतिग्रस्त इमारतों के पुनर्निर्माण में लगे अर्थमूवर।

अभय शुक्ला

हिमाचल और उत्तराखंड जैसे हिमालयीन राज्य बादल फटने, अचानक बाढ़, भू-धंसाव और भरभराते बुनियादी ढांचे की मार से अलग-अलग टुकड़ों में बंट रहे हैं। अकेले हिमाचल प्रदेश में इन आपदाओं के कारण 2022 और 2025 के बीच 1,200 लोगों की जान जा चुकी है और 18,000 करोड़ रुपये का नुकसान उठाना पड़ा है (इसमें व्यापार और आर्थिक गतिविधियों को हुआ अप्रत्यक्ष नुकसान शामिल नहीं)।

सरकार हमें समझाना चाहती है कि जो हो रहा है, वह प्राकृतिक आपदा है। बहरहाल, यह प्राकृतिक आपदा है या मानव निर्मित, यह इस आलेख का विषय नहीं। मैं इस आलेख में इससे भी बड़े और जरूरी विषय की ओर ध्यान खींचना चाहता हूं- क्या देश हिमालय के विनाश को झेल सकता है और क्या इन हिमालयीन राज्यों को मदद की जरूरत है?

हिमाचल और उत्तराखंड के जंगलों, ग्लेशियरों और नदियों के बिना उत्तर भारत और उसके गंगा के मैदान रेगिस्तान बन जाएंगे। ये नदियां लगभग 30 करोड़ लोगों का भरण-पोषण करती हैं और कई शहरों की जीवनरेखा हैं। हिमालय की हिन्दुकुश पर्वतमालाएं जलवायु को संतुलित रखने में मदद करती हैं, जिससे मानसूनी वर्षा और हिमपात संभव होता है और हर साल नदियां पानी से भर जाती हैं। इनमें हिन्दू धर्म के कुछ सबसे पूजनीय धार्मिक स्थल और तीर्थयात्रा मार्ग स्थित हैं। ये 'हरित फेफड़े' हैं जो उत्तर भारत को सांस लेने में सक्षम बनाते हैं और हर साल 4 करोड़ पर्यटकों को राहत प्रदान करते हैं। हम इस प्राकृतिक संपदा को खोने का जोखिम नहीं उठा सकते, लेकिन आर्थिक बाध्यताओं के कारण हम इन्हें खोते जा रहे हैं।

हिमाचल जैसे हिमालयीन राज्यों के लिए तो यह दोहरी मार है। एक ओर तो आय के सीमित स्रोत होने के कारण वे राजस्व घाटे से जूझ रहे हैं- उनके पास सेब की खेती को छोड़कर न तो अधिशेष कृषि उत्पादन है और न ही औद्योगिक या विनिर्माण आधार या फिर मजबूत सेवा क्षेत्र। दूसरी ओर, भौगोलिक हालात और जलवायु संबंधी कारणों से बुनियादी विकास की लागत मैदानी इलाकों की तुलना में दोगुनी है।

उनके लिए आय के एकमात्र स्रोत उनके जंगल और नदियां हैं, जिनका जलविद्युत परियोजनाओं और पर्यटन के लिए बेरहमी से दोहन किया जा रहा है। पिछले 20 सालों में हिमाचल प्रदेश ने विभिन्न गैर-वानिकी परियोजनाओं के लिए 11,000 हेक्टेयर घने जंगल का इस्तेमाल कर लिया है। इसकी वजह से हमें कई तरह के नुकसान उठाने पड़ते हैं और जान-माल की हानि उठानी पड़ती है। पिछले कुछ सालों के दौरान इस तरह के खतरों की तीव्रता जलवायु परिवर्तन के कारण और बढ़ गई है, जो नदियों के जल विज्ञान को बुरी तरह प्रभावित कर रही है, हिमनदों के पिघलने में तेजी ला रही है और हिमनद झीलों के फटने से बाढ़ का खतरा बढ़ा रही है।

> हिमाचल प्रदेश समेत हिमालयीन राज्यों को देश के अन्य भागों के लोगों के जीवन की गुणवत्ता और कृषि, जलवायु नियंत्रण, जल विद्युत, कार्बन सोखने और पर्यटन जैसे क्षेत्रों में उनके गैर-मौद्रिक, लेकिन महत्वपूर्ण योगदान के लिए केन्द्र सरकार द्वारा मुआवजा दिया जाना चाहिए

काश, केन्द्र सरकार इन हिमालयीन राज्यों की वास्तविक संपदा और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में इनके योगदान को समझ पाती और उनके मामलों को विशुद्ध नफे-नुकसान के नजरिये से नहीं देखती।

वन प्रबंधन संस्थान, भोपाल की 2025 की रिपोर्ट के मुताबिक, हिमाचल की कुल वन संपदा का मूल्य 9.95 लाख करोड़ रुपये आंका गया था। रिपोर्ट में हिमाचल के वनों का सालाना सकल आर्थिक मूल्य (टीईवी) 3.20 लाख करोड़ रुपये आंका गया है - इसमें कार्बन सोखने के लिए 1.65 लाख करोड़ रुपये, पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के लिए 68,941 करोड़ रुपये, जैव विविधता के मूल्य के रूप में 32,901 करोड़ रुपये, जल प्रावधान के लिए 13 करोड़ रुपये, बाढ़ नियंत्रण और तलछट रोके रखने जैसे योगदान के लिए 13 करोड़ रुपये शामिल हैं। इन योगदानों से सिर्फ हिमाचल ही नहीं, बल्कि पूरे देश को फायदा होता है। अफसोस की बात है कि राज्यों को केन्द्रीय मदद देते समय न तो इन योगदानों के आधार पर राशि तय की जाती है और न इस ओर ध्यान ही दिया जाता है। इसमें बदलाव जरूरी है।

हिमाचल प्रदेश (और अन्य हिमालयीन राज्यों) को देश की भलाई, जीवन की गुणवत्ता और कृषि, जलवायु नियंत्रण, जल विद्युत, कार्बन सोखने और पर्यटन जैसे क्षेत्रों में उनके गैर-मौद्रिक, लेकिन महत्वपूर्ण योगदान के लिए केन्द्र सरकार द्वारा मुआवजा दिया जाना चाहिए।

वैसे, ऐसा करने की व्यवस्था पहले से ही मौजूद है - वित्त आयोग, जो राज्यों को केन्द्रीय धन हस्तांतरित करने का सूत्र तय करता है। इसकी शुरुआत 12वें वित्त आयोग ने की थी, जिसने इस उद्देश्य के लिए कुल 1,000 करोड़ रुपये आवंटित किए थे। 'हरित बोनस' कहे जाने वाले इस मद में हिमाचल प्रदेश का हिस्सा मात्र 20 करोड़ रुपये था।

'हरित कोष' बनाने के विचार को आगे बढ़ाना चाहिए। हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री सुखविंदर सुक्खू ने 16वें वित्त आयोग के अध्यक्ष के समक्ष यह मुद्दा उठाया है और पर्वतीय राज्यों को प्रोत्साहित करने के लिए 50,000 करोड़ रुपये के बजट के आवंटन का अनुरोध किया है। इस पर गंभीरता से गौर किया जाना चाहिए- अतिरिक्त धन आवंटन हिमालयीन राज्यों की वित्तीय स्थिति को सुधारने में काफी मददगार साबित होगा और बजट घाटे को पूरा करने के लिए पारिस्थितिक पूंजी का बेरहमी से दोहन करने की उनकी मौजूदा मजबूरी को दूर करेगा।

इस धनराशि को पर्यावरणीय मानकों में सुधार, विकास और पर्यटन परियोजनाओं की स्थिरता, नदियों के संरक्षण और अवैध खनन एवं निर्माण कार्यों पर अंकुश लगाने के आधार पर जारी किया जाना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट हिमाचल प्रदेश में पर्यावरणीय विनाश का स्वतः संज्ञान लेते हुए सुनवाई कर रहा है। शीर्ष अदालत का कहना है कि जिस गति से यह विनाश हो रहा है, उससे हिमाचल 'भारत के मानचित्र से गायब हो जाएगा'। दरअसल, सुप्रीम कोर्ट को भी इस मुद्दे पर विचार करना और केन्द्र सरकार को ऐसा कोष बनाने के लिए कहना चाहिए।

हिमालय की रक्षा को एक साझा जिम्मेदारी के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि केवल पर्वतीय राज्यों की चिंता के रूप में। अगर हिमालय अपने जंगल, नदियां और ग्लेशियर खो देता है, तो उत्तर भारत का हश्र सिंधु घाटी सभ्यता जैसा होने में देर नहीं लगेगी। ■

अभय शुक्ला रिटायर्ड आईएएस अधिकारी हैं। यह avayshukla.blogspot.com से लिए उनके लेख का संपादित रूप है।

हिन्दुत्व के 'आदर्शलोक' की तरफ ले जाने वाली राह

भाजपा की रीति-नीति की वजह से आने वाले दशकों में भी हम असमान रूप से समृद्ध भारत की ओर लगातार बढ़ते रहेंगे

आकार पटेल

पैंतीस साल पहले, भारत ने दो रास्ते चुने थे, और वह आज भी इन्हीं दोनों पर कायम है। पहला रास्ता था अर्थव्यवस्था के एक नए रूप की ओर बढ़ना। इसे अनौपचारिक रूप से उदारीकरण कहा गया और इसमें भारत को विदेशी पूंजी के लिए खोलना, लाइसेंस राज को खत्म करना और सार्वजनिक क्षेत्र के एकाधिकार को खत्म करना शामिल था।

वैसे तो साफ तौर पर नहीं कहा गया था, लेकिन उदारीकरण का लक्ष्य जापान, ताइवान और दक्षिण कोरिया जैसे एशियाई देशों के रास्ते पर चलते हुए भारत का औद्योगीकरण करना था। हमारे साथ ही एक और देश भी यही कोशिश कर रहा था, और वह था चीन। उदारीकरण के शिखर पर, जिसकी तारीख हम 24 जुलाई 1991 को मानते हैं (जब वित्त मंत्री मनमोहन सिंह ने अपना बजट पेश किया था), भारत और चीन आर्थिक विकास के एक ही दौर से गुजर रहे थे। विश्व बैंक के अनुसार, 1991 में दोनों देशों की प्रति व्यक्ति जीडीपी 334 डॉलर थी।

ऐसा कहा जाता है कि चीन हमसे थोड़ा आगे था, क्योंकि उनके आर्थिक खुलेपन की प्रक्रिया माओ त्से तुंग की मृत्यु के ठीक बाद शुरू हुई थी, यानी भारत से लगभग एक दशक पहले। लेकिन चीन एक बहुत ही कठिर स्थिति से गुजर रहा था, जहां निजी क्षेत्र बिल्कुल नहीं था और एक ऐसा समाज था, जो सांस्कृतिक क्रांति से आहत था, और एक-संतान नीति जैसी क्रूरता से

अनदेखी भाजपा के अपनाए रास्ते से प्रगति की बातें बेबुनियाद ही लगती हैं।

अभी भी त्रस्त था। इसलिए यह कहना उचित होगा कि 1991 में हम वास्तव में बराबरी पर थे।

इस रास्ते पर अब तक जो कुछ हुआ है, उसे दशकों के हिसाब से संक्षेप में समझा जा सकता है। 1990 के दशक के अंत तक, चीन की प्रति व्यक्ति जीडीपी भारत की तुलना में दोगुनी हो गई थी। अगले दशक की शुरुआत में अटल बिहारी वाजपेयी के शासनकाल ने हमें 'इंडिया शाइनिंग' का वादा दिया था। लेकिन 2000 के दशक के अंत तक, चीन तीन गुना आगे निकल चुका था। इसके बाद मनमोहन सिंह के दौर में, चीन चार गुना आगे था। नरेन्द्र मोदी के न्यू इंडिया में, यह पांच गुना बढ़ गया है।

2008 के वैश्विक वित्तीय संकट के समय तक, वैश्विक अर्थव्यवस्था पर नजर रखने वाले द इकोनॉमिस्ट, द वॉल स्ट्रीट जर्नल और फाइनेंशियल टाइम्स जैसे प्रकाशन, यह अनुमान लगाते हुए फीचर छाप रहे थे कि भारत, जापान, दक्षिण कोरिया और चीन की राह पर हैं। लेकिन कोविड महामारी के आते-आते यह सिलसिला खत्म हो गया। ऐसा मान लिया गया कि भारत वह नहीं कर रहा था और न ही कर सकता था जो एशियाई टाइगर्स ने किया था, और उसे कमोबेश अपने भाई बांग्लादेश और कुछ हद तक पाकिस्तान के समान ही गति से विकास करना था।

इसके कई क़ारण हो सकते हैं, लेकिन मुख्य कारण राज्य, यानी सरकारी तंत्र, की नीतियों को प्रभावी ढंग से विकसित और लागू करने की नाकामी थी। आज, भारत का प्रति व्यक्ति जीडीपी 2,696 डॉलर है, जो चीन ($13,303) की तुलना में बांग्लादेश ($2,593) और पाकिस्तान ($1,484) से अधिक है।

यही कारण है कि सरकार खुद मानती है कि अधिकांश भारतीयों को खाद्य सहायता यानी मुफ्त राशन की जरूरत है और विकास के मिथकों के पीछे असली समस्या नौकरियां और घोर असमानता हैं। हालांकि यह स्पष्ट है कि यह अपेक्षित रूप से काम नहीं कर रहा है, फिर भी भारत उसी आर्थिक पथ पर बना हुआ है।

1990 में भारत ने जो दूसरा रास्ता चुना था, उस पर भी वह आज भी कायम है। यह बहुलवाद और धर्मनिरपेक्षता से दूर हटकर उस आदर्शलोक की ओर बढ़ना था, जिसका वादा भाजपा की विचारधारा ने किया था, जिसे उसने 1996 के अपने घोषणापत्र में हिन्दुत्व कहा था। बाबरी मस्जिद और उसके बाद हुए नरसंहारों के खिलाफ पार्टी के सफल अभियान ने भारत को एक नई दिशा में बहुत तेजी से आगे बढ़ाया।

1951 में गठित इस पार्टी का 1990 तक बिना गठबंधन के अपना कोई मुख्यमंत्री नहीं था। इन सभी दशकों में इसका राष्ट्रीय वोट शेयर एक अंक में रहा, जो बाबरी के बाद लालकृष्ण आडवाणी के नेतृत्व में दोगुना होकर लगभग 18 प्रतिशत हो गया और फिर नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में दोगुना होकर 36 प्रतिशत हो गया। विकास के पहले रास्ते के विपरीत, इस दूसरे रास्ते पर रफ्तार काफी तेज रही है। वाजपेयी के नेतृत्व में, भाजपा आज की तरह अल्पसंख्यक विरोधी राजनीति में उतनी मुखर नहीं थी। ऐसा इसलिए था, क्योंकि कुछ लोगों को लगता था कि वाजपेयी का रुख नरम था, हालांकि यह सच है कि वह सहयोगियों पर निर्भर थे और इसलिए उन्हें इस मामले में संकोच के लिए मजबूर होना पड़ा।

2002 की घटनाओं ने इसे बदल दिया। भाजपा को अपना नया नेता मिला, जो दोनों दिशाओं का प्रतीक था। 1991 के सुधारों से सबसे ज्यादा लाभान्वित होने वाले राज्य से आने के बावजूद, उसने दावा किया कि राज्य की सापेक्षिक प्रगति उसकी वजह से हुई। 2002 के नरसंहार और वाजपेयी द्वारा उन्हें हटा पाने में नाकाम रहने ने उसे भविष्य के प्रमुख व्यक्ति के रूप में स्थापित कर दिया, जिसे वह पूरा करने में सक्षम रहा।

उन्होंने 1990 में भारत द्वारा चुने गए दोनों रास्तों पर प्रगति का वादा किया था, लेकिन उसे केवल एक ही रास्ते पर ले जा पाए। आज भारत की तुलना चीन से नहीं की जाती और सरकार ने बाकी दुनिया की तरह तुलना करना छोड़ दिया है। इसके बजाय हम आंतरिक उत्पीड़न, पाकिस्तानी सेना और बांग्लादेशी शरणार्थियों से लड़ते हुए इस मामले में खुश रहते हैं। 1990 के बाद भाजपा की चुनावी सफलता का अर्थ यह है कि इस रास्ते को छोड़ना कठिन होगा, क्योंकि इन नीतियों को ही पुरस्कृत किया जाता है।

युवा पाठकों को 1990 बहुत पहले की बात लगेगी, लेकिन हममें से कई लोगों के लिए यह बस एक ताजा याद है। हम उन दशकों पर नजर डाल सकते हैं और समझ सकते हैं कि क्या हुआ और क्यों। आने वाले दशकों में भी, हम संभवतः असमान रूप से समृद्ध भारत की ओर स्थिर प्रगति देखेंगे, लेकिन साथ ही हिन्दुत्व के स्वप्नलोक की ओर अधिक दृढ़ता से आगे बढ़ते हुए भी देखेंगे। ■

> युवा पाठकों को 1990 बहुत पहले की बात लगेगी, लेकिन हममें से कई लोगों के लिए यह बस एक ताजा याद है। हम उन दशकों पर नजर डाल सकते हैं और समझ सकते हैं कि क्या हुआ, क्योंकि इसके बिना कोई समझ बनाना आसान नहीं होगा

झूठ उजागर करते हैं 2003 के दिशानिर्देश

देखना है कि अब चुनाव आयोग बिहार के बाद अन्य राज्यों में एसआईआर के पक्ष में क्या तर्क गढ़ता है

योगेन्द्र यादव

मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण या एसआईआर का बुनियादी झूठ पकड़ा गया है। इस झूठ का पर्दाफाश उस दस्तावेज से हुआ, जिसे चुनाव आयोग पिछले तीन महीनों से छुपा रहा था। यह दस्तावेज़ है वर्ष 2003 में बिहार की वोटर लिस्ट में हुए गहन पुनरीक्षण की फाइनल गाइडलाइन।

किस्सा यूं है कि जब से बिहार में एसआईआर का आदेश आया, तब से चुनाव आयोग ने एक ही रट लगाई हुई है — "हम तो वही कर रहे हैं, जो 2003 में हुआ था। इसमें नया क्या है? आप ऐतराज क्यों कर रहे हैं?" लेकिन अचरज की बात यह है कि चुनाव आयोग ने 2003 की फाइल कभी भी सार्वजनिक नहीं की। सुप्रीम कोर्ट में दाखिल किए अपने 789 पेज के हलफनामे के साथ भी दायर नहीं की। जब कोर्ट में सुनवाई के दौरान यह सवाल उठाया गया कि "अच्छा यह दिखाइए कि आपने 2003 में क्या किया गया था?", तो आयोग चुप्पी लगा गया। जब पारदर्शिता एक्टिविस्ट अंजलि भारद्वाज ने आरटीआई के जरिये इस आदेश की प्रति मांगी, तो चुनाव आयोग ने कोई जवाब नहीं दिया। जब पत्रकारों ने पूछा, तो चुनाव आयोग के सूत्रों ने जवाब दिया कि फाइल गुम हो गई है। साफ था कि चुनाव आयोग कुछ छुपा रहा था, लेकिन सही सूचना किसी के पास थी नहीं।

आखिर यह छुपा-छिपी का खेल खत्म हुआ और पिछले हफ्ते सुप्रीम कोर्ट के अधिवक्ता प्रशांत भूषण ने इस दस्तावेज को सुप्रीम कोर्ट में प्रस्तुत कर दिया। दिनांक 1 जून 2002 को चुनाव आयोग द्वारा जारी यह 62 पेज का दस्तावेज अब सार्वजनिक हो चुका है। उसे पढ़ने के बाद समझ आता है कि आखिर चुनाव आयोग इस दस्तावेज को दबाकर क्यों बैठा था — क्योंकि इसमें जो लिखा है, वह एसआईआर संबंधी चुनाव आयोग के तीनों बुनियादी दावों का खंडन करता है।

चुनाव आयोग का पहला झूठ यह है कि 2003 में सभी मतदाताओं ने गणना पत्र या एन्यूमरेशन फॉर्म भरे थे। यही नहीं, पिछली बार सारी प्रक्रिया 21 दिनों में पूरी कर ली गई थी। उसी तर्ज पर इस बार भी फॉर्म भरवाए गए और पूरा एक महीने का समय दिया गया। लेकिन 2003 की गाइडलाइन कुछ और ही कहानी बताती है। इस दस्तावेज से यह साफ है कि 2003 में किसी भी मतदाता से कोई एन्यूमरेशन फॉर्म नहीं भरवाया गया था। उन दिनों चुनाव आयोग के स्थानीय प्रतिनिधि के बतौर बीएलओ की जगह एन्युमेरेटर हुआ करते थे। उन्हें निर्देश था कि वे घर-घर जाकर पुरानी मतदाता सूची में संशोधन करें। संशोधित सूची को नए सिरे से लिखा जाता था और उस पर परिवार के मुखिया के हस्ताक्षर करवाए जाते थे। सामान्य वोटर के लिए न कोई फॉर्म था, न कोई समय सीमा और न ही फॉर्म न भरने पर लिस्ट से अपने आप नाम कट जाने का डर। यानी इस बार एसआईआर में जो हुआ है, उसका कोई दृष्टांत नहीं था।

चुनाव आयोग का दूसरा झूठ यह है कि 2003 में दस्तावेजों की शर्त बहुत कड़ी थी — तब तो मतदाताओं को केवल चार दस्तावेजों का विकल्प दिया गया था, जबकि अब 11 दस्तावेज स्वीकार किए जा रहे हैं।

लेकिन गाइडलाइन बताती है कि 2003 में किसी से कोई दस्तावेज मांगा ही नहीं गया था। दस्तावेज केवल उन लोगों से मांगे गए थे, जो किसी दूसरे प्रदेश से आकर पहली बार अपने पूरे परिवार का वोट बनवा रहे थे, या उनसे, जिनके बारे में शक था कि वे अपनी आयु ठीक नहीं बता रहे हैं अथवा अपना सामान्य

आशंका चुनाव आयोग के दावे लगातार झूठे साबित हो रहे हैं। इसीलिए लोगों में संदेह बरकरार है।

निवास गलत बता रहे हैं। यानी कि पिछली बार कुछ एक अपवाद को छोड़कर किसी से कोई दस्तावेज मांगा ही नहीं गया था, कोई सार्वभौमिक दस्तावेज सत्यापन नहीं हुआ था।। इसके ठीक उलट एसआईआर में हर व्यक्ति से कुछ न कुछ कागज मांगा गया था, या तो 2003 की वोटर लिस्ट में नाम का प्रमाण या फिर 11 दस्तावेजों में कोई एक। गनीमत थी की बाद में सुप्रीम कोर्ट ने उस सूची में आधार कार्ड जोड़ दिया।

चुनाव आयोग का तीसरा और सबसे बड़ा झूठ यह है कि 2003 में नागरिकता का सत्यापन हुआ था। चुनाव आयोग का कहना था कि 2003 की वोटर लिस्ट में जो लोग थे, उनकी नागरिकता पहले ही जांची जा चुकी है। इसलिए अब बाकी लोगों से दस्तावेज मांगे जा रहे हैं। यहां फिर पुराना दस्तावेज इस झूठ का भंडाफोड़ करता है। इन गाइडलाइन में सभी वोटर की नागरिकता की जांच की कोई व्यवस्था नहीं थी। उलटे पुरानी गाइडलाइन के पैरा 32 में साफ लिखा है कि एन्यूमरेटर का काम नागरिकता की जांच करना नहीं है।

पिछले आदेश के अनुसार, नागरिकता का प्रमाण केवल दो स्थितियों में मांगा जा सकता था। या तो ऐसा इलाका हो, जिसको राज्य सरकार ने 'विदेशी बाहुल्य क्षेत्र' घोषित कर रखा हो। अगर ऐसे इलाके में कोई नया व्यक्ति वोट बनाने आए, जिसके परिवार के किसी व्यक्ति का वोट न हो, तो उसकी नागरिकता की जांच की जा सकती थी, या फिर तब, जबकि किसी व्यक्ति के बारे में लिखित आपत्ति आए कि वह भारत का नागरिक नहीं है। उस स्थिति में आपत्ति करने वाले को उस व्यक्ति के विदेशी होने का प्रमाण देना होता था। उसके अलावा न किसी की जांच होती थी, न किसी का नाम इस आधार पर काटा जा सकता था। पुरानी गाइडलाइन में साफ लिखा है कि अगर किसी का नाम पूर्व स्थापित वोटर लिस्ट में है, तो उसे वजन दिया जाएगा। इस बार चुनाव आयोग ने विदेशी को चिन्हित करने का काम अपने हाथ में ले लिया। पिछली बार यह दायित्व सरकार का था, चुनाव आयोग का नहीं।

मतलब यह कि चुनाव आयोग का यह दावा कि वह एसआईआर में 2003 की गहन पुनरीक्षण की प्रक्रिया को दोहरा रहे हैं, सरासर झूठ साबित हो चुका है। यही नहीं, चुनाव आयोग द्वारा 2003 की मतदाता सूची में शामिल निर्वाचकों को दस्तावेजों से छूट देने का प्रावधान भी आधारहीन साबित हो चुका है। देखना है कि अब चुनाव आयोग बिहार के बाद अन्य राज्यों में एसआईआर के पक्ष में क्या तर्क गढ़ता है। ■

> चुनाव आयोग का यह दावा कि वह एसआईआर में 2003 की गहन पुनरीक्षण की प्रक्रिया को दोहरा रहे हैं, सरासर झूठ साबित हो चुका है। यही नहीं, चुनाव आयोग द्वारा 2003 की मतदाता सूची में शामिल निर्वाचकों को दस्तावेजों से छूट देने का प्रावधान भी आधारहीन साबित हो चुका है

गाजा में शांति का यह अल्पविराम है

ट्रंप जिसे स्थायी शांति बता रहे, वह अस्थायी स्थिति है, क्योंकि इसे स्थायी बनाने वाले जरूरी उपाय नहीं किए गए हैं

अशोक स्वैन

अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप का कहना है कि गाजा में युद्ध खत्म हो गया है। 'मध्य पूर्व में एक नई सुबह लाने की सफलता' से खुश ट्रंप वापस घर लौट गए हैं। संदेह नहीं कि बंधकों को रिहा कर दिया गया है और गोलाबारी रुक गई है, लेकिन आखिर यह शांति कितनी स्थायी है? दरअसल, गाजा की वास्तविकता बहुत जटिल है।

सीजफायर और इसराइल का अपनी सेना को थोड़ा पीछे हटा लेना अच्छे शुरुआती कदम हैं, लेकिन यह शांति योजना इसराइल को गाजा के बड़े हिस्से पर कब्जा बनाये रखने की इजाजत देता है, और उसकी सेना कब तक पूरी तरह हट जाएगी, इसकी कोई स्पष्ट समयसीमा नहीं है।

नेतन्याहू सीजफायर पर मिस्र में आयोजित समारोह में शामिल नहीं हुए। शांति योजना, जैसी भी है, उसमें अंतरराष्ट्रीय कानून या जांचकर्ताओं की कोई बाध्यकारी भूमिका नहीं रखी गई है। इसराइली सेना ने गाजा में कब्जा जमा रखा है और वहां भेजी जाने वाली कोई भी मदद या तेल की आपूर्ति अब भी उन क्रॉसिंग पर निर्भर है जो कभी भी अचानक बंद हो सकती हैं।

इनकार नहीं कि गाजा के लोगों के लिए कुछ राहत है। गोलाबारी मोटे तौर पर रुक चुकी है, राहत सामग्री की सप्लाई धीरे-धीरे हो रही है, और कई हजार कैदियों की घर वापसी भी हुई है। कुछ परिवारों ने उत्तर की ओर लंबी पैदल यात्रा शुरू कर दी है। यहां शांति जितनी नाजुक है, उससे अधिक भला और क्या ही हो सकता था! इसराइल ने इसे भी कहने से कोई परहेज नहीं किया कि वह सीजफायर समझौते की मानवीय शर्तों को नहीं मानेगा।

यह प्रक्रिया अपने आप में कम जटिल नहीं। मरे हुए बंधकों के अवशेष सौंपने को लेकर भी भ्रम था। बंधकों, हथियारों से जुड़ी सहमति को जमीन पर उतारने की प्रक्रिया की छोटी से छोटी बात पर कोई ऐसा विवाद खड़ा हो सकता है, जो इस नाजुक शांति को खत्म कर दे। दूसरी डरावनी संभावना कभी न खत्म होने वाली वह अनिश्चितता है जिसमें कोई बड़ा एयरस्ट्राइक तो नहीं होगा, लेकिन फिलिस्तीनियों को कोई वास्तविक अधिकार भी नहीं मिलेगा, उनकी कोई असली घर वापसी नहीं होगी, और भीड़-भाड़ वाले कैंपों की श्रृंखला सामान्य बात होकर रह जाएगी।

सीजफायर करार पर दस्तखत होने के अगले ही दिन इसराइली सेना ने गाजा में नौ फिलिस्तीनियों को गोली मार दी। जब ट्रंप एक 'नए मध्य पूर्व' की ऐतिहासिक शुरुआत की घोषणा कर रहे थे, तब नेतन्याहू गाजा को 'हथियार मुक्त' करने की कसम खा रहे थे, और धमकी दे रहे थे कि अगर यह सीधे तरीके से नहीं हुआ, तो इसके लिए उंगली टेढ़ी भी की जाएगी। किसी भी तरह यह शांति की भाषा नहीं; ऐसा लगता है कि - मानो तो मानो, नहीं तो हमने विकल्प तो खुले रखे ही हैं- तर्ज पर धमकी दी जा रही है। शांति योजना फिलिस्तीन के बाहर बनी, जिसमें मिस्र, कतर, तुर्की और संयुक्त अरब अमीरात बिचौलियों और निगरानी रखने वालों की भूमिका में रहे। संदेह नहीं, इस तरह के सहयोग के कारण गाजा में संघर्ष रोकने में मदद मिली, लेकिन फिलिस्तीनियों को इसमें नहीं सुना गया कि वे क्या चाहते हैं और शांति प्रक्रिया को व्यवहार में उतारने के दौरान उन पर कौन राज करेगा, गाजा से सैनिक कब और कैसे जाएंगे, आम लोगों की जिंदगी कैसे पटरी पर आएगी और युद्ध जर्जर इलाके में पुनर्निर्माण का काम कैसे होगा।

नजारा गाजा से रिहाकर होकर आने पर इसराइल में इस तरह भावुक हो गए लोग।

शांति के लिए काम करने वालों को अपनी ताकत का इस्तेमाल करके सैनिकों की वापसी की एक स्पष्ट समयसीमा तय करनी चाहिए थी, इस वापसी की पुष्टि की व्यवस्था होनी चाहिए थी और खुली क्रॉसिंग और बुनियादी अधिकारों की पक्की सुरक्षा सुनिश्चित करनी चाहिए थी। इसके बिना गाजा का प्रबंधन बाहरी लोग ही करेंगे, जबकि प्रयोग के विफल होने पर स्थानीय लोगों को न केवल इसकी कीमत चुकानी होगी, बल्कि इसका दोष भी उठाना होगा। इस संघर्ष से कितना नुकसान हुआ है, इसे शब्दों में बयां नहीं किया जा सकता। लाखों लोग मारे गए हैं या घायल हुए हैं। गाजा सिटी और खान यूनिस के पूरे रिहाइश हिस्से पूरी तरह तबाह हो चुके हैं। ज्यादातर हॉस्पिटल काम नहीं कर रहे। स्कूल नेस्तनाबूद हो गए हैं। गाजा पट्टी को रहने के काबिल नहीं छोड़ने वाले इस 'इलाकाई नरसंहार' से उबरने में पीढ़ियां लगने वाली हैं। उत्तर की ओर लौट रहे परिवार धूल में मिल चुकी इमारतों वाली ऐसी सड़कों से गुजर रहे हैं, जिन्हें पहचानना उनके लिए मुश्किल हो रहा है।

> शांति समझौते का असर होगा कि गाजा में कोई बड़ा एयरस्ट्राइक नहीं होगा, लेकिन फिलिस्तीनियों को कोई वास्तविक अधिकार भी नहीं मिलेगा, उनकी कोई असली घर वापसी नहीं होगी, और भीड़-भाड़ वाले कैंपों की श्रृंखला सामान्य बात होकर रह जाएगी

इस हकीकत के मद्देनजर बीस-सूत्री योजना सच में अधूरी लगती है। इसमें कहा गया है कि इसराइल गाजा पर कब्जा नहीं करेगा और हमास वहां राज नहीं करेगा। इसमें इलाके की निगरानी के लिए एक अंतरराष्ट्रीय परिषद और रोजाना के कामकाज के लिए फिलिस्तीनी टेक्नोक्रेट्स का प्रावधान है। यह संकेत है कि अगर सुधार होते हैं अगर सुरक्षा हालात इसकी इजाजत देते हैं वगैरह-वगैरह, तो इससे फिलिस्तीनी आत्मनिर्णय का रास्ता निकल सकता है। यह पटकथा बड़ी पहचानी-सी है। बिना डेडलाइन वाले रास्ते फैसलों को टालने और जिम्मेदारी से बचने का तरीका हैं। बाहरी लोगों को निर्देशित करने वाली परिषद को संप्रभुता या स्व-शासन नहीं कहा जा सकता, यह एक संदिग्ध ट्रस्टीशिप भर है।

इस शांति समझौते के एक बुरा उदाहरण बनने का गंभीर खतरा है। अगर किसी नरसंहार के बाद ऐसा शांति समझौता होता है, जो इंसाफ का इंतजार करते हुए दुश्मनी खत्म करने पर ध्यान केन्द्रित करे, तो इससे दूसरे यही सीख लेंगे कि ज्यादा ताकत जमीनी हकीकत बदल सकती है और बाद में वहां पुनर्निर्माण के लिए पैसे दुनिया को देने पड़ेंगे। इसे रोकने के लिए योजना में सबूतों की हिफाजत, जांचकर्ताओं को खुली पहुंच, सभी सुरक्षा बलों की सावधानी से स्क्रीनिंग, पीड़ितों के लिए मुआवजा, और दंड मुक्ति के खिलाफ पक्के नियम शामिल होने चाहिए। ये ऐसे मामले नहीं, जिन्हें बाद के लिए छोड़ दिया जाए। दरअसल, ये किसी भी सफल शांति की नींव हैं।

वैश्विक संस्थाओं की साख भी दांव पर है। यूएन कमीशन और दूसरी यूएन संस्थाओं ने गाजा में जो-कुछ भी जुर्म हुआ है, उसे नरसंहार करार दिया है। आईसीसी ने गिरफ्तारी वारंट जारी किए हैं। अगर समझौता उन बातों को नजरअंदाज करता है या वारंट को बकवास बना देता है, तो इससे इन संस्थाओं की साख तो घटेगी ही, आम लोगों की सुरक्षा के लिए की गई बचाव व्यवस्था को भी नुकसान होगा। जब तक गाजा के शासन के इंतजाम और पुनर्निर्माण के पैसे इन कानूनी मामलों में असली सहयोग से नहीं जोड़े जाते, शांति प्रक्रिया का जाया हो जाना तय है।

इस योजना के प्रवर्तकों का कहना है कि इससे इलाका बदल जाएगा। वे अब्राहम समझौते को बढ़ाने, यहां तक कि ईरान को नई व्यवस्था में शामिल करने की बात करते हैं। वे पुनर्निर्माण के लिए तेजी से फंड जारी करने का भी वादा करते हैं। लेकिन खाड़ी देश तब तक ब्लैंक चेक नहीं लिखेंगे, जब तक इसराइली सैनिकों का गाजा के बड़े हिस्से पर कब्जा है और जब तक क्रॉसिंग और तेल आपूर्ति मनमानी पर निर्भर हैं। सऊदी अरब और दूसरे देश इस बात के पक्के संकेत चाहते हैं कि यह प्रक्रिया एक फिलिस्तीनी देश की ओर ले जाएगी, लेकिन नेतन्याहू ने इसे बार-बार मना किया है।

क्या वहां सैनिकों की वापसी की स्पष्ट समय सीमा वाली व्यवस्था होगी जिसकी पुष्टि भी की जा सके? क्या बफर जोन के रूप में इसराइली फुटप्रिंट की जगह यूएन की देखरेख वाली कोई सुरक्षा व्यवस्था होगी? क्या लोगों और सामान के आने-जाने के लिए क्रॉसिंग बिना किसी मनमानी बंदिश के खुलेंगे? क्या फिलिस्तीनी अपने नेता खुद चुनेंगे और अपना पुनर्निर्माण खाका खुद तैयार करेंगे, या कोई अंतरराष्ट्रीय बोर्ड दूर रहते हुए इसका प्रबंधन करेगा? क्या मदद कुछ समय के लिए आएगी और फिर चेकपॉइंट पर रुक जाया करेगी; या यह भरोसेमंद, नियमित रूप से आती रहेगी? ये असली सवाल हैं और इनके जवाब ही तय करेंगे कि फिलिस्तीनी उम्मीद भरी जिंदगी जीने वाले हैं या फिर वे कब्जे वाले टेंटों में जिंदगी बिताएंगे। ■

अशोक स्वेन स्वीडन की उप्सला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं।

नोबेल की मंद पड़ती चमक पर एक और आघात

मारिया कोरिना मचाडो को नोबेल पुरस्कार उनकी दृढ़ता की जीत नहीं, पुरस्कार के भटकाव का नया प्रस्थान बिंदु है

संस्कार नोबेल शांति पुरस्कार पाने वाली वेनेजुएला की विपक्षी नेता मारिया कोरिना मचाडो का राजनीतिक बपतिस्मा मतदान नहीं, विध्वंस के जरिये हुआ था।

हसनैन नकवी

वेनेजुएला की विपक्षी नेता मारिया कोरिना मचाडो ने 10 अक्तूबर को 2025 का नोबेल शांति पुरस्कार स्वीकार करते हुए जो कुछ कहा, सोशल मीडिया और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खूब चर्चा हुई। उन्होंने कहा, "यह सम्मान वेनेजुएला की दृढ़ता और अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप द्वारा हमारी लोकतांत्रिक आकांक्षाओं के प्रति अटूट समर्थन का नतीजा है।"

उनका उद्बोधन आंतरिक सहमेल नहीं, बाह्य लाभ पर आधारित करियर के अनुरूप था। सवाल है कि एक नेता, जिसकी कार्यशैली में तख्तापलट, आर्थिक घेराबंदी और युद्धोन्मादियों को लुभाने की कोशिशें शामिल हों, 'शांति का प्रतीक' कैसे बन सकता है? ओस्लो के इस चयन ने नोबेल की घटती प्रतिष्ठा पर न सिर्फ एक गहरी छाया डाल दी है, भू-राजनीतिक पक्षपात में उलझी चयन प्रक्रिया को भी उजागर कर दिया है। अहिंसा के सम्मान के प्रति समर्पित यह पुरस्कार अंततः एक ऐसे व्यक्ति को केन्द्र में ले आता है, जिसके कार्यकलाप अस्थिरता के चक्र को बढ़ावा देने वाले हैं।

मचाडो का राजनीतिक बपतिस्मा मतपेटी से नहीं, विध्वंस के गुबार से हुआ था। अप्रैल 2002 में राष्ट्रपति ह्यूगो चावेज़ के अल्पकालिक तख्तापलट के दौरान कराकास में जब टैंक गूंज रहे थे, वह विपक्ष की छाया सरकार में एक प्रमुख कार्यकर्ता के रूप में उभरीं। कुख्यात कार्मोना डिक्री पर हस्ताक्षर करके, मचाडो ने एक ऐसे दस्तावेज पर अपना नाम लिख दिया जिसने न सिर्फ संविधान को निलंबित किया, नेशनल असेंबली खत्म कर दी और न्यायिक स्वतंत्रता एक ही झटके में धराशायी हो गई। चुनावी अतिरेक को सुधारने के नाम पर जो कुछ हुआ, वह संस्थागत विनाश का एक खाका था।

कारोबारी अभिजात वर्ग और अमेरिकी दूतावास की कानाफूसी से समर्थित यह तख्तापलट तीन दिन चला। जन-आंदोलन के दबाव में 14 अप्रैल को चावेज़ पुनः सत्ता में लौटे। मचाडो ने इसे निरंकुशता के खिलाफ स्वतःस्फूर्त विद्रोह बताया, लेकिन उस हिंसा को नजरअंदाज कर गईं जिसमें 19 लोगों की जान गई और मीडिया ब्लैकआउट ने असहमति के स्वरों को दबा दिया था। मानवाधिकार निगरानीकर्ताओं सहित आलोचकों ने बाद में बताया कि विपक्षी गुटों ने मचाडो के मुखर समर्थन के साथ, राज्य मीडिया और यूनियन नेताओं को किस तरह निशाना बनाया।

यह प्रकरण 'लोकतंत्र को सुविधानुसार इस्तेमाल और त्यागने के उपकरण के रूप में' उनके करियर की दिशा तय कर गया। बाद के वर्षों में मचाडो तख्तापलट वाली अपनी साख के सहारे कांग्रेस की सीट तक पहुंचीं, जहां लाखों लोगों को गरीबी से बाहर निकालने में भूमिका को नजरअंदाज करते हुए न सिर्फ भूमि सुधारों और सामाजिक कार्यक्रमों के विरोध में खड़ी दिखीं , बल्कि इन्हें ज़ब्त करने का आह्वान किया। संप्रभुता के प्रति उनका यह तिरस्कार वैश्विक तारीफ पाने के लिए राष्ट्रीय स्वायत्तता को नीलाम करने की उनकी इच्छा का बेशर्म प्रदर्शन ही था।

मचाडो के प्रभाव को समझने के लिए चंद नीतियां ही काफी हैं, जैसे आर्थिक प्रतिबंधों की उनकी अड़ियल वकालत, जिसका समर्थन ओबामा काल में हुआ जरूर, लेकिन इसे असल बढ़ावा ट्रंप के शासनकाल में मिला। खुद को वेनेजुएला की प्रवासी अंतरात्मा के रूप में स्थापित करते हुए, उन्होंने न सिर्फ वाशिंगटन के गलियारों में पैरवी की, वित्तीय अलगाव के गुणों पर कांग्रेस के समक्ष गवाही देते दिखाई दीं। उन्होंने जोर देकर कहा, "लक्षित उपाय, बिना किसी अतिरिक्त नुकसान के मादुरो शासन पर दबाव डालने का काम करेंगे- ऐसा दावा साबित हुआ जो हर दिन सामने आते सबूतों के सामने खुद झूठा साबित होता है।"

2025 तक प्रतिबंधों ने भारी नुकसान पहुंचायाः अति मुद्रास्फीति ने मजदूरी में 99 प्रतिशत कटौती की, ब्लैकआउट में अस्पताल बंद हो गए और आयात प्रतिबंधों ने शिशु मृत्यु दर बढ़ा दी। आर्थिक एवं नीति अनुसंधान केन्द्र से लेकर संयुक्त राष्ट्र के प्रतिवेदकों तक, स्वतंत्र विश्लेषण इन प्रतिबंधों को 40,000 से अधिक रोकी जा सकने वाली मौतों से जोड़ते हैं, जिनमें से ज्यादातर कमजोर वर्ग के थे। मचाडो ने ऐसे आंकड़ों को शासन का दुष्प्रचार बताकर खारिज किया और उपायों की सराहना करते हुए उन्हें "नार्को-तानाशाही" के विरुद्ध "नैतिक स्पष्टता" का नाम दिया।

> ओस्लो के गलियारों में मचाडो द्वारा ट्रंप के प्रति आभार ज्ञापन की गूंज बहुत खोखली है। यह उन गठबंधनों के लिए जाम टकराने जैसा है जो सिर्फ दुश्मनी को जन्म देते हैं। स्थायी समझौते की शांत कोशिशों से उनका दूर का भी वास्ता नहीं

उनका उत्साह अर्थशास्त्र से भी कहीं आगे तक फैला हुआ था। 2019 में बढ़ते तनाव के बीच मचाडो ने इसराइली प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू से सैन्य सहायता की सार्वजनिक रूप से गुहार लगाई, वेनेज़ुएला के 'उत्पीड़न' और फिलिस्तीनी संघर्षों के बीच समानताएं गिनाईं, हालांकि इसराइल के अपने बेहिसाब बल प्रयोग के रिकॉर्ड को दरकिनार किया। यह हताशाजनक गठजोड़ इराक और लीबिया में अमेरिकी हस्तक्षेप से पहले से ही त्रस्त एक अस्थिर क्षेत्र में बाहरी ताकतों को आमंत्रित करने वाला था। उनके आग्रह को तवज्जो मिली। ट्रंप प्रशासन ने मादक पदार्थों के खिलाफ कार्रवाई की आड़ में कैरिबियन में नौसैनिक संसाधन भेजे तो मचाडो अभियान की प्रशंसा करते हुए उन्हें "साहसिक निवारक कदम" बताती दिखीं। उन्हें अमेरिकी विमानवाहक "लोकतांत्रिक मानदंडों" को लागू करने को तत्पर मुक्तिदाता लग रहे थे। आक्रमण के साथ ऐसी छेड़खानी मोनरो सिद्धांत की भावना को उभारता है, जहां एक छद्म संघर्ष में उलझने का खतरा होता है और जो कोलंबिया से लेकर ब्राजील तक के पड़ोसियों को अपनी चपेट में ले सकता है।

ग्वारिम्बास और अहिंसक प्रतिरोध का मिथक

मचाडो की घरेलू रणनीति और ज्यादा भयावह थी। 2014 में, जब आर्थिक संकट गहराने लगा, उन्होंने 'ला सालिडा' (द एग्जिट/निकास) अभियान की योजना बनाई, जो निरंतर अशांति के जरिये मादुरो को सत्ता से बेदखल करने का एक बहुआयामी प्रयास था। चुनावी सुधारों की मांग से शुरू हुआ यह आंदोलन 'गुआरिम्बा' में तब्दील हो गया- ऐसा शहरी विद्रोह जिसमें मोटरसाइकिल गश्त, मोलोटोव हमले और विपक्षी गढ़ों से स्नाइपर फायरिंग शामिल थी।

एमनेस्टी इंटरनेशनल से लेकर इंटर-अमेरिकन कमीशन ऑन ह्यूमन राइट्स तक, अंतरराष्ट्रीय पर्यवेक्षकों ने इस रणनीति की निंदा की। फिर भी, विदेशों में सुरक्षित ठिकानों से प्रसारण करते हुए मचाडो ने इस तबाही को 'वेनेज़ुएला वसंत' के रूप में प्रस्तुत किया, अरब जागरण के आख्यानों से समानताएं दर्शाते हुए, अफ्रीकी-वेनेज़ुएला और स्वदेशी चाविस्ताओं को जातीय रूप से निशाना बनाए जाने की बात को नजरअंदाज कर दिया। 2017 और 2019 के दंगों में भी यही ढर्रा दिखा, जहां मचाडो के नेटवर्क ने संघर्ष जारी रखने के लिए मियामी के निर्वासितों से धन उगाहा। इसी रणनीति का असर था कि आस-पड़ोस निर्जन क्षेत्रों में बदल गया और चुनावी रास्तों में लोगों का भरोसा कम हो गया, जिन्हें अब वह सब धोखाधड़ी बताती फिर रही हैं।

नवउदारवादी दासी: संप्रभुता की नीलामी

मचाडो प्रबल नवउदारवाद का प्रतीक हैं, जो सार्वजनिक संपत्तियों को प्रगति में बाधक मानता है। मादुरो के बाद के वेनेजुएला के लिए उनकी नजर में पीडीवीएसए तेल क्षेत्रों, ओरिनोको माइनिंग आर्क रियायतों और सामुदायिक जल प्रणालियों का व्यापक निजीकरण शामिल है- जो 1990 के दशक में अर्जेंटीना को तबाह करने वाले और बोलीविया के गैस भंडारों को खोखला करने वाले संरचनात्मक समायोजनों की याद दिलाता है। मचाडो तर्क देती हैं, "दक्षता बाजार मांगती है" और ऐसे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) के प्रवाह का वादा करती हैं, जो ऐतिहासिक रूप से बहुराष्ट्रीय कंपनियों को समृद्ध बनाता है, जबकि स्थानीय कंपनियों को दरकिनार (विस्थापित) करते हैं।

यह एजेंडा उनकी ट्रांसअटलांटिक वफादारी से मेल खाता है। बुश के शासनकाल से ही रिपब्लिकन फंडरेजर में शामिल रहीं मचाडो ने जॉन बोल्टन से लेकर मार्को रुबियो तक से रिश्ते मजबूत बनाए और खुद को लैटिन अमेरिका की बोलिवेरियन विरोधी गढ़ के तौर पर स्थापित किया। यरुशलम में दूतावास स्थानांतरण सहित इजराइल के साथ पूर्ण राजनयिक संबंध बहाली का उनका संकल्प न सिर्फ पुनर्संरेखण का संकेतक है, बल्कि उन नीतियों के साथ वैचारिक समानता का भी संकेत देता है, जो सुरक्षा को विस्तारवाद के साथ मिला देती हैं।

ट्रंप को अपना नोबेल समर्पित करते हुए, मचाडो ने संकेत दिया कि उनका भावी प्रशासन 'मेक अमेरिका ग्रेट अगेन' (मागा) की व्यावहारिक राजनीति के प्रति समर्पित होगा, जहां वेनेजुएला की रिकवरी का मतलब एक्सॉनमोबिल और हैलिबर्टन के लिए संसाधनों में कटौती है। यह प्रबंधन नहीं है; यह प्रतिबंधों से राहत और चुनावी अभियान के लिए संप्रभुता का व्यापार करते हुए उप-ठेके जैसा है। मारिया कोरिना मचाडो का नोबेल पुरस्कार दृढ़ता की जीत नहीं है; यह पुरस्कार के भटकाव का एक चेतावनीपूर्ण आरोप है। ऐसे व्यक्ति का सम्मान करके, जिसका करियर विभाजन को समर्पित रहा हो, समिति ऐसी विश्वदृष्टि के साथ खड़ी है जहां शांति थोपी जाती है, जहां 'लोकतंत्र' आर्थिक विनाश की अनदेखी करता है और 'आजादी' विदेशी सैनिकों की राह खोलती है।

इस 'गोलीबारी' में फंसा वेनेज़ुएला इससे कहीं बेहतर का हकदार है। क्षीजते चुनावी अविश्वास के बीच जैसे-जैसे मादुरो की पकड़ मज़बूत हो रही है, मचाडो के सत्ता में आने का खतरा मंडरा रहा है। ओस्लो के गलियारों में मचाडो द्वारा ट्रंप के प्रति आभार ज्ञापन की गूंज खोखली है- यह उन गठबंधनों के लिए जाम टकराने जैसा है जो सिर्फ दुश्मनी को जन्म देते हैं, स्थायी समझौते की शांत कोशिशों से उनका दूर का भी वास्ता नहीं। ■

हसनैन नक़वी मुंबई के सेंट जेवियर्स कॉलेज में इतिहास संकाय के पूर्व सदस्य हैं।

महिलाओं की अनदेखी व्यवस्था का आईना

बेशर्म प्रदर्शन पीड़ादायक। हमारी विरासत उदारवादी। जहां आजादी ज़हन में नहीं रही, वहां कोई आवाज उठाने की हिम्मत नहीं कर सकता

मीनाक्षी नटराजन

बीते दिनों एक प्रेस वार्ता हुई। दुनिया भर से महिला आंदोलन की स्वीकृति का पचहत्तरवां साल मनाया जा रहा है। लेकिन महिला पत्रकार विदेश मंत्रालय द्वारा आयोजित अफगानिस्तान के मंत्री आमिर खान मुत्ताकी की वार्ता में नदारद रहीं। क्या संबंधों को घनिष्ठ करने की गरज इतनी भारी है कि हम अपने ही संविधान और संविधान प्रदत्त समता को नजरअंदाज करने पर आमादा हैं?

इस घटना से कई सवाल उठते हैं। कुछ संकेत हिला देने वाले हैं। पिछले कुछ समय से हमारे हुक्मरान की तमाम देशों की यात्रा, राष्ट्रनायकों से झप्पी के बाद भी जिस तरह पहली बार भारत वैश्विक सामरिक तन्हाई झेल रहा है, क्या यह वार्ता उसकी प्रतिकृति नहीं? हमारे साथ टैरिफ युद्ध छेड़ने वाले, एच 1 वीजा की राशि बढ़ाने वाले ट्रंप सरकार का गाजा में सतही समझौते की पेशकश करना, इतना प्रभावित कर गया कि हमारे हुक्मरान बारंबार तारीफ के पुल बांधते रहे। दूसरी तरफ, चीन से नजर मिलाने की हिम्मत नहीं, घुसपैठ पर चर्चा तो बहुत दूर है। तब भी यह उम्मीद तो नहीं थी कि अफगानिस्तान जैसे मुल्क की तालिबानी सरकार को हमारे हुक्मरान इस हद तक जाकर खुश करना चाहेंगे।

भले ही आलोचनाओं के चलते आनन-फानन में एक अन्य वार्ता महिला पत्रकारों के साथ फिर आयोजित हुई, मगर भारत की बेबसी का यह बेशर्म प्रदर्शन बहुत पीड़ादायक था। इस वार्ता ने एक और पहलू को भी उजागर किया। महिला पत्रकार की अनुपस्थिति किसी को आयोजन के दौरान नहीं खली। पुरुष पत्रकार खुशी से शामिल होने चले गए। तो क्या लैंगिक समता, न्याय मात्र स्त्रियों का मुद्दा है? यह क्या अपने आप में पितृसत्तात्मक सोच नहीं कि स्त्री के लिए, बस वही खड़ी रहे। हरेक को खांकों, भूमिकाओं में बांटना निःसंदेह पितृसत्तात्मकता की परिणति है। क्या तमाम पुरुष पत्रकारों को बहिष्कार नहीं करना चाहिए था। जैसा कि पूर्व गृह मंत्री ने भी बयान में कहा। यदि महिलाओं के प्रति यह भेद दिखाई तक नहीं दिया, तो क्या यह मान लेना चाहिए कि पिछले दशक का उन्मुखीकरण ऐसा हो चला है कि अब भेदभाव दिखाई नहीं पड़ता। वह नव-सामान्य है, अपवाद नहीं। यदि राष्ट्रीय राजधानी के सरकारी प्रेस वार्ता में यह सहजता से हो गया, तब सुदूर इलाकों का क्या होगा? सोचना कठिन नहीं है। याद दिलाने का मन करता है कि वह फूले, बाबा साहेब, पेरियार, गांधी, राजा राम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे अनगिनत ही थे, जिन्होंने इस भेद को अस्वीकार करना शुरू किया। महिलाएं तो बाद में आगे आईं। ऐसे में लैंगिक अल्पसंख्यकों को न्याय की उम्मीद तक नहीं करनी चाहिए। एक पल की असजगता कैसे किसी समूह को अदृश्य कर सकती है! मानस से और मानसिकता से शून्य बना सकती है।

क्या यही वह मानसिकता नहीं, जहां महिलाएं मात्र बाल विकास मंत्रालय संभालती हैं। जहां वही स्त्रीवादी मूल्यों पर बोलती हैं। तो क्या लैंगिक न्याय पूरे समाज का मुद्दा नहीं.? जैसे कि सामाजिक न्याय पूरे समाज के लिए जरूरी हैं, क्या इस घटना ने यह नहीं दर्शाया कि महिला हक असल में हक नहीं, पुरुष प्रधानता की मेहरबानी है। वे चाहें तो मिलेगी, अन्यथा नहीं।

बेबसी चौतरफा आलोचना के बाद अफगानी मंत्री आमिर खान मुत्ताकी को महिला पत्रकारों के साथ प्रेस वार्ता को मजबूर होना पड़ा। लेकिन इस मामले में भारत और पुरुष पत्रकारों के रवैये पर प्रश्नचिह्न तो उठे ही।

> निडरता के बिना निर्मलता नहीं आ सकती। इन दोनों के बिना लोकतंत्र कायम नहीं रह सकता। कुछ विचार व्यवस्थाएं डर को पोषित करती हैं, ताकि निडरता और निर्मलता खत्म हो जाए। ऐसी व्यवस्थाओं का मिलन कुछ दर्शाता है

इस घटना से एक और बात स्पष्ट हुई। कैसे विचार व्यवस्था अभ्यास को पोषित करती है। हाल में शतक पूरा किए संगठन की विचार व्यवस्था 2014 से सरकार में है। वह संगठन स्त्रीमुक्त होने पर गौरवान्वित है। स्त्री को माया, शाब्दिक अर्थ से समझें तो "त्रिया चरित" कहा जाता है। माने उसके पास मात्र शरीर है। कोई मनीषा नहीं। सो उसका स्थान तय है। मानव सभ्यता के विकास पर दृष्टि डालें, तो कुछ और तथ्य सामने आते हैं।

कृषि विकास के क्रमिक दौर में क्षेत्र (खेत) की मालिकी तय होने लगी। जीवन स्थापित बसाहट की ओर बढ़ा। तब स्त्री भी पुरुष का "क्षेत्र" मानी गई। उसकी कोख पर हक तय पुरुष का होने लगा। यह पितृसत्ता की शुरुआत थी। उस दौर की कहानियों में किसी पति की मृत्यु होने पर या उसके पुंसत्व हीन होने पर पत्नी नियुक्त पुरुष के साथ संतानोत्पत्ति कर सकती थी। ऐसे संतान क्षेत्रज कहलाते। धीरे-धीरे यह प्रथा खत्म हुई। पितृसत्ता और भी प्रगाढ़ हुई।

शतक पूरा किए संगठन ने आदर्श स्त्री को परिभाषित किया है। आज्ञाकारी, पतिव्रता आदि उसके गुण हैं। सबसे अहम् बात यह है कि वह अपना जीवनसाथी नहीं चुन सकती। लव जिहाद, अंतरजातीय विवाह पर सम्मान, हत्या असल में स्त्री हक पर हमला है। यौन संबंधों में उसकी रजामंदी कोई मायने नहीं रखती। दांपत्य में तो कतई नहीं। वह पत्नी धर्म माना गया है। सो वैवाहिक बलात्कार की तो बात ही नहीं हो सकती। गौरतलब है कि जिनकी पत्रकार वार्ता थी, उनकी विचार व्यवस्था से इनको परहेज नहीं हो सकता।

अफगानिस्तान की इसी सरकार ने स्त्री शिक्षा, खेलकूद में भागीदारी, चिकित्सा सेवा में आगे आना, अन्य कामकाजी पेशे अपनाने पर पाबंदी लगाई है। मलाला को याद करने पर भी, यह ध्यान रहे कि एक का छूट जाना चक्रव्यूह के ध्वंस होने का सानी नहीं है। दिल्ली में जो हुआ, वह हमख्यालों का ही करार है। बामियान उनको नहीं भाया। मगर यहां हुक्मरान भी तो मर्जी का इतिहास, विरासत लेखन करना चाहते हैं। बहुत कुछ कलम से तोड़ना- मरोड़ना चाहते हैं।

व्यवस्थाएं अभ्यास को आदत में तब्दील करने का माद्दा रखती हैं। अभ्यास सचेत होता है, आदतें अवचेतन होती हैं। गुलामी को पोषित करती व्यवस्था में अभ्यास लकवाग्रस्त हो जाता है। गुलामी की आदत पड़ जाती है। यहां तक कि उदारता की ओर झुके व्यक्ति, संस्थाएं भी बिना सोचे गुलामी को सुविधानुसार ओढ़ लेती हैं। तभी सबरीमला हो या हाजी अली, महिला प्रवेश पर तथाकथित उदारपंथी भी कट्टरता के साथ कंधा मिला लेते हैं। यह व्यवस्था को दर्शाती है।

यह भी विचारणीय है कि पड़ोसी मुल्क को, जहां से सीमा पार आतंकवाद को बढ़ावा मिलता है, उससे गुरेज है। निःसंदेह होना चाहिए। बशर्ते कि वहां के मासूम आवाम के प्रति हृदय में कोई मलिनता न हो। मगर क्या वैचारिक तौर पर अभिव्यक्ति और आजादी पर पाबंदी लगाने वाली व्यवस्था तहजीबी आतंक का स्वरूप नहीं? उससे जब हथ मिलाया जाता है, तब वह हमें अपने आप के बारे में कुछ बताता है।

ऐसे में बार-बार यह याद रखना चाहिए कि हमारी विरासत उदारवादी है। प्रभुत्व संपन्न वर्ग के एक लघु कट्टर समूह की मनमानी, पाबंदी को थोपना हमें भी उस दिशा में ले जाने की कोशिश है। जहां आजादी ज़हन में नहीं रही, वहां कोई आवाज उठाने की हिम्मत नहीं कर सकता। कुछ दिनों पूर्व सोशल मीड़िया पर व्यंग्य चलवाया गया कि उस देश में गांधी और चरखा भेजकर देखो। पर याद रहे गांधी, नमक, चरखे ने हमें डर से आजाद किया। निडरता के बिना निर्मलता नहीं आ सकती। इन दोनों के बिना लोकतंत्र कायम नहीं रह सकता। कुछ विचार व्यवस्थाएं डर को पोषित करती हैं, ताकि निडरता और निर्मलता खत्म हो जाए। ऐसी व्यवस्थाओं का मिलन कुछ दर्शाता है। बात सिर्फ महिलाओं की नहीं है। ■

परंपरागत दीपावली का विलोम बन गया दीपोत्सव

अयोध्यावासियों के लिए समझना मुश्किल हो रहा कि वे उसके पारंपरिक उल्लास को कैसे बचाएं?

कृष्ण प्रताप सिंह

अयोध्या की आने वाली पीढ़ियां भविष्य में जब भी इसका लेखा-जोखा करने बैठेंगी कि उन्होंने पिछले तीन-चार दशकों में पहले भारतीय जनता पार्टी और विश्व हिन्दू परिषद के हड़बोंगों, फिर निरंकुश सत्ता में अपनी कौन कौन-सी और कितनी बेशकीमती विरासतें गंवा दीं, तो निस्संदेह उन्हें बहुत अफसोस होगा। क्योंकि वे मशहूर शायर मुजफ्फर रज्मी की इन पंक्तियों को सार्थक होती देखने को अभिशप्त होंगी : ये जब्र भी देखा है तारीख़ की नज़रों ने, लम्हों ने ख़ता की थी, सदियों ने सज़ा पाई!

जो लोग उतनी ही अयोध्या से परिचित हैं, जो टीवी के पर्दे पर दिखाई जाती है, उनके लिए इस पर एतबार करना मुश्किल हो सकता है, लेकिन कड़वी होने के बावजूद सच्चाई यही है कि उत्तर प्रदेश की योगी आदित्यनाथ सरकार द्वारा पिछले कई सालों से उत्सवों के नाम पर प्रायोजित होते जा रहे तथाकथित भव्य और दिव्य आयोजनों (जिनमें शेखचिल्लीपना ज्यादा नजर आता है) ने अयोध्या से न सिर्फ गरीबों के तीर्थ की उसकी पुरानी पहचान छीन ली है, बल्कि उसके परंपरागत मेलों और पर्वों को भी ग्रहण लगा दिया है।

तिस पर पिछले दिनों प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ और केन्द्रीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ऐतिहासिक बृहस्पतिकुंड के बहुत प्रचारित जीर्णोद्धार के बाद उसका लोकार्पण करने अयोध्या पधारे तो एक और 'चमत्कार' कर डाला। उन्होंने कुंड में दक्षिण भारत के तीन संगीतज्ञों की मूर्तियों का अनावरण किया तो गुरु बृहस्पति को भूल गए! इससे, और तो और, रामजन्मभूमि की प्राप्ति में भाजपा-विहिप के योगदान को स्तुत्य बताने वाले प्रतिष्ठित हनुमत निवास पीठ के चर्चित महंत आचार्य मिथिलेश नंदिनीशरण तक को चौंधियाती सरकारी जगर-मगर के बीच अपने जैसे औसत अयोध्यावासियों की आंखों की रौशनी छिनती लगने लगी। कारण यह कि उन्हें अपने इस सवाल का जवाब नहीं मिला कि सरकारी और गैर-सरकारी अतिक्रमणों के चलते हवनकुंड भर बचे बृहस्पतिकुंड में देवगुरु बृहस्पति कहां हैं? तब व्यथित होकर यह तक कहने पर उतर आए कि हम अयोध्यावासी कहां जाएं, किसके आगे रोएं और किससे पूछें?

जहां तक दूसरे अयोध्यावासियों की बात है, उनकी ट्रेजेडी यह है कि उनको समझ में नहीं आ रहा कि अपनी उस परंपरागत दीपावली को कैसे बचाएं, जो सरकारी दीपोत्सव की दिव्यता और भव्यता के बोझ तले दबी जा रही है? पिछले कई सालों से जब भी दीपावली आती है, अयोध्या में उसका सब कुछ सरकारी दीये, बाती और तेल से जलाए जाने वाले दीपों की संख्या को रिकार्ड स्तर तक पहुंचाने की निरर्थक होड़ के हवाले कर दिया जाता है और परंपरागत दीपावली के दीपों की कौन कहे, गुण और मूल्य भी कोने-अंतरों तक के मोहताज हो जाते हैं।

गौरतलब है कि यह तब है, जब दीपावली अपने मूल रूप में न सिर्फ किसानों के घर नई फसल आने के उल्लास का पर्याय बल्कि धनतेरस और भइया दूज आदि सिद्धि एवं समृद्धि के पांच पर्वों का अनूठा गुच्छा भी है। तिस पर अयोध्या में, जिसके निवासियों ने कभी लंका पर विजय प्राप्त करके लौटे अपने आराध्य राम के स्वागत में घी के दीये जलाकर दीपावली मनाने की परंपरा डाली, उसकी परंपरागत छटा का तो कहना ही क्या!

बदलाव अयोध्या के लोगों के लिए अब दीपावली गुजरे जमाने की बात लगती है। असल में उसकी जगह दीपोत्सव ने ले ली है।

अलबत्ता, इस छटा के अवलोकन के लिए जानना जरूरी है कि अपने ज्ञात इतिहास में अयोध्या देश के अन्य अंचलों के अलावा अवध, बिहार और झारखंड के सदियों से गरीबी और गैरबराबरी से अभिशापित तबकों के धर्म-कर्म की नगरी भी रही है। इसलिए उसकी पारंपरिक दीपावली में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो दीन-दुखियों की वंचनाओं को लेकर उनका तिरस्कार करता या चिढ़ाता और वैभव या भव्यता का अंध अभिषेक करता नजर आए। उसकी दीपमालिकाओं का सौंदर्य भी उनकी जगर-मगर में कम सादगी में ज्यादा दिखाई देता है। यह सादगी एलान-सा करती है कि उसका दीपावली मनाकर भगवान राम की अगवानी करना प्रजा के तौर पर उनके सामने बिछ जाना भर नहीं है। वैसे भी राम विधिवत अयोध्या के राजा अपने स्वागत में दीपावली मनाए जाने के बाद बने थे।

लेकिन यहां एक पेंच भी है। घी के दीयों वाले रूपकों में खोए हुए कई महानुभाव अयोध्या में चतुर्दिक भव्यता ही तलाशने लग जाते हैं तो इस सादगी के सौंदर्य का दीदार नहीं कर पाते। यह समझने के लिए तो वैसे भी शौक-ए-दीदार चाहिए कि अयोध्या के हजारों मंदिरों के गर्भगृहों में मिट्टी के बने दीये ही क्यों जलाए जाते हैं और क्यों आम लोग ये दीये जलाने भी उनके गर्भगृहों तक नहीं जा सकते?

> अयोध्या में दीपावली किसी को भी अंधेरे में न रहने देने और हर किसी को उजाले से नहलाने का नाम हो जाती है। इसलिए खेत-खलिहानों, कोठारों, हलों-जुआठों के साथ गायों-बैलों के बांधे जाने की जगहों, खूंटों, सानी-पानी की नांदों और चरनियों पर भी दीपदान किए जाते रहे हैं

दरअसल, गर्भगृहों में पहले मुख्य पुजारी अपने आराध्यों को नहला-धुलाकर दीपावली के अवसर विशेष के लिए बनी नई पोशाकें पहनाते, सजाते-धजाते और पूजा-अर्चना करके दीये जलाते हैं, फिर उनके बाहर साधु-संत। हां, मंदिरों की दीपावली में पुजारियों और साधु-संतों द्वारा आरोपित बंदिशों की परंपरा जैसे ही मंदिरों के बाहर गृहस्थ समाजों में पहुंचती है, अपना अर्थ खो देती है। वहां दीये जलाए नहीं, बल्कि दान किए जाते हैं और इस दीपदान में आम तौर पर कोई भेदभाव नहीं बरता जाता। कोई न कोई दीया उस घूर गड्ढे के नाम भी किया जाता है, जिसमें यों साल भर घर गृहस्थी के उच्छिष्टों और ढोरों के गोबर आदि को सड़ाया जाता है। इससे प्रेरित एक कहावत भी है कि घूरे के दिन भी कभी न कभी बहुरते ही हैं।

अयोध्या में इस मुकाम तक पहुंचकर दीपावली किसी को भी अंधेरे में न रहने देने और हर किसी को उजाले से नहलाने का नाम हो जाती है। इसलिए खेत खलिहानों, कोठारों, हलों-जुआठों के साथ गायों-बैलों के बांधे जाने की जगहों, खूंटों, सानी-पानी की नांदों और चरनियों पर भी दीपदान किए जाते रहे हैं।

बुजर्गों की मानें तो सर्वसमावेशी दीपदानों की इस परंपरा में जगर-मगर की अति की कतई कोई जगह नहीं है। इसमें बच्चे कुम्हारों के बनाए खिलौनों से खेलते हैं-बाजार से लाई गई हिंसा की प्रशिक्षक बंदूकों या प्लास्टिक के खिलौनों से नहीं। बड़ों द्वारा अपने घरों के बाहर सुदर्शन घरौंदे बनाए जाते हैं, जिनमें उनकी सुखद और सुंदर घरों की कल्पना साकार होती दिखती है।

दरअसल, गोस्वामी तुलसीदास ने अपने वक्त में अयोध्या और उसके आसपास के क्षेत्रों के जिन जीविकाविहीन लोगों की बेबसी को 'बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन, जानत हौं चारि फल चार ही चनक को' जैसे शब्दों में अभिव्यक्त किया और तफसील से बताया कि वे कैसे 'सीद्यमान सोच बस कहइं एक एकन सों कहां जाई का करी', वे अपनी दीपावली को भव्यता की गोद में ले ही नहीं जा सकते थे। इसलिए उन्होंने सादगी और समतल का वह रास्ता चुना था, जो बिना हर्रें-फिटकरी के उनकी दीपावली का रंग चोखा कर सके। न अमावस्या की रात को किसी की आंखों को अंधेरे से पीड़ित करने दे, न ही प्रकाश के अतिरेक को इतना चौंधियाने दें कि वे अंधी-सी होकर रह जाएं।

दीपावली पर भी वे मदांध होकर भूल नहीं जाते थे कि अयोध्या के मठों और मंदिरों को आमतौर पर उसके आसपास के क्षेत्रों और बिहार और झारखंड की गरीबी ही आबाद करती रही है। कभी गरीबी की जाई यातनाओं, तो कभी जमींदारों और सामंतों के अत्याचारों के कारण अनेक लोग अपने रहने की जगहों से भागकर अयोध्या आते और साधु बन जाते रहे हैं। यह साधु बन जाना तब उनके निकट धर्मसत्ता द्वारा प्रदान की जाने वाली सामाजिक सुरक्षा का वायस हुआ करता था।

हां, अभी हाल के दशकों तक अयोध्या में दीपावली आती तो खील-बताशों, लइया और गट्टों की बहार आ जाती थी। बाद में चीनी के बने हाथी-घोड़े और खाने के दूसरे मीठे खिलौने भी उसका आकर्षण बन गए थे। भोले-भाले ग्रामीणों के साथ ज्यादातर संभ्रांत नागरिकों की आकांक्षाएं भी तब इतनी ही हुआ करती थीं कि साईं इतना दीजिए जामे कुटुम समाय। अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए उन्हें इससे आगे किसी महंगे भोग विलास की लिप्सा आमतौर पर नहीं ही सताती थी। वे इतने भर से ही खुश हो लिया करते थे कि अयोध्या के जुड़वां शहर फैजाबाद में रामदाने की करारी लइया, गुड़ की पट्टी और गट्टे बनाने वालों की बाकायदा एक गली हुआ करती है और आसपास के जिलों के लोग भी उसकी मिठास के दीवाने हैं। जब भी वे अयोध्या आते हैं, ये चीजें ले जाते हैं।

दरअसल, वह ऐसे संतोष-धन का वक्त था, जिसमें धर्मप्राण प्रजाजन अपनी सारी चिंताएं उन राम के हवाले करके चैन पा लेते थे, जिनके लिए कभी उनके पुरखे घी के दीये जलाते थे। उनके निकट वे उन जैसे सारे निर्बलों के बल थे।

वे अभी भी अपने राम को निर्बलों और निर्धनों का बल ही बनाए रखना चाहते हैं और यह देखकर बहुत व्यथित होते हैं कि भाजपा सरकारें व्यर्थ की चकाचौंध के सहारे उन्हें अपना बल बना लेने के द्रविड़ प्राणायाम में लगी हैं। लोकसभा चुनाव में अपने जनादेश में लोगों ने इसके प्रति अपना विरोध भी दर्ज कराया था, लेकिन इन सरकारों को सद्बुद्धि नहीं आई। योगी सरकार तो अभी भी अपने दीपोत्सव को अयोध्या की परंपरागत दीपावली का विलोम बनाने पर ही तुली हुई है। ■

Published Date 19 October, 2025 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

मिरिगुड़ा की असल संजीवनी

असुन्ता टोप्पो छत्तीसगढ़ के धरमजयगढ़ ब्लॉक में सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली का एक विश्वसनीय चेहरा बन चुकी हैं, जिन पर लोग आंख मूंदकर भरोसा करते हैं

संघर्ष का फल अपने काम से उत्साहित असुन्ता कहती हैं, 'मैं यहां 2005 से हूं और तमाम बदलाव देखे। पहले तो मुझे एक ही दिन में 15-20 किलोमीटर पैदल चलकर अलग-अलग गांवों तक जाना पड़ता था'। लेकिन सबके सहयोग से अब यह आसान हो गया है। (बाएं) कृषि यहां के लोगों की प्रमुख आजीविका है।

पुरुषोत्तम ठाकुर

वह उन्हें 'मां' कहता है, लेकिन संजीवनी असुन्ता का बेटा नहीं है। असुन्ता टोप्पो धरमजयगढ़ ब्लॉक के मिरिगुड़ा स्थित स्वास्थ्य उपकेन्द्र में ग्रामीण स्वास्थ्य संयोजक (आरएचओ) हैं, जहां वह करीब दो दशकों से काम कर रही हैं। कुछ साल पहले उनके सामने एक मामला आया, जहां एक महिला की प्रसव के दौरान स्थिति काफी खराब थी। उस महिला का रक्तचाप बहुत अधिक था और हीमोग्लोबिन सात ग्राम से भी कम। असुन्ता बताती हैं, "जब वह महिला हमारे स्वास्थ्य केन्द्र पर पहुंची, तब तक उसे प्रसव पीड़ा शुरू हो चुकी थी। हम उसे टेबल पर ले भी नहीं पाए थे कि बच्चे का जन्म हो गया।"

स्वास्थ्य उपकेन्द्र (जिसे स्थानीय रूप से उपस्वास्थ्य केन्द्र कहा जाता है) में डिलीवरी के बाद बच्चे की हालत ठीक नहीं थी। असुन्ता बताती हैं, "यहां हमारे पास ऑक्सीजन की सुविधा नहीं थी और मां की स्थिति भी उतनी ही नाज़ुक थी।" महिला को बहुत अधिक रक्तस्राव हो रहा था और असुन्ता यह तय नहीं कर पा रही थीं कि पहले मां की देखभाल करें या बच्चे की। असुन्ता बताती हैं, "पहले हम उन्हें धरमजयगढ़ ले गए। वहां एक डॉक्टर थीं, जिनका नाम मैं नहीं लेना चाहूंगी। उन्होंने नाराजगी जताई और पूछा कि हम मां और बच्चे को इतनी गंभीर और नाज़ुक हालत में उनके पास लेकर क्यों आए?" लेकिन असुन्ता ने मां और बच्चे के स्वास्थ्य के लिए डॉक्टर से बहस की। "मैंने उनसे कहा, अगर आप नहीं कर सकतीं, तो रहने दीजिए. बस मेरी थोड़ी मदद कर दीजिए। वह गुस्सा हो गईं।"

असुन्ता ने बच्चे को उठाया और एम्बुलेंस मंगाए जाने की बात की। आखिरकार डॉक्टर ने उनकी बात मानी और बच्चे को एक इंजेक्शन लगाया। असुन्ता बताती हैं कि उनके साथ आई मितानिन (प्रशिक्षित सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता) ने उनकी बहुत मदद की। उसने बच्चे को मुंह से सांस देकर जिंदा रखने की कोशिश की।

आखिरकार राज्य के स्वास्थ्य हेल्पलाइन नंबर 108 ने जवाब दिया, एक एम्बुलेंस आई और एक डॉक्टर ने महिला के इलाज की जिम्मेदारी उठाई। वह छत्तीसगढ़ के रायगढ़ शहर स्थित रायगढ़ मेडिकल कॉलेज के लिए रवाना हुए, जो एक बहुत बड़ा अस्पताल है। असुन्ता कहती हैं, "मैं बच्चे को अपनी गोद में लिए हुए थी।" और वह रास्ते भर मुंह से सांस देकर बच्चे को जीवित रखने की कोशिश करती रहीं। असुन्ता नवजात बच्चे को लेकर वहां के डॉक्टरों के पास पहुंचीं, तो उन्हें बताया गया कि वह बच्चा बच नहीं पाएगा। वह बताती हैं, "बाल रोग विशेषज्ञ ने कहा कि उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं है।" अब असुन्ता यूं निराश होने के लिए तो बच्चे के साथ 80 किलोमीटर का सफर तय करके आई नहीं थीं, इसलिए उन्होंने डॉक्टरों पर अपना काम करने के लिए दबाव डाला। असुन्ता एक लंबी सांस भरते हुए कहती हैं, "मां और बच्चा दोनों बच गए। इससे मुझे बहुत संतोष मिला।" वह कहती हैं कि "अब पांच साल हो गए हैं, वह पूरी तरह ठीक और स्वस्थ है।" वह छोटा बच्चा मिरिगुड़ा गांव में अपने किसान परिवार के साथ रहता है। असुन्ता मुस्कुराकर कहती हैं, "मैंने उसका नाम 'संजीवनी' रखा है! क्योंकि पहली बार मुझे उसके लिए संजीवनी सेवा (एम्बुलेंस) का सहारा मिला था!" असुन्ता को स्थानीय लोग अक्सर 'सिस्टर' (नर्स) कहकर पुकारते हैं।

***

ग्रामीण स्वास्थ्य संयोजक असुन्ता टोप्पो उरांव समुदाय से ताल्लुक़ रखती हैं और छत्तीसगढ़ के धरमजयगढ़ ब्लॉक (जिसे पहले उदयपुर के नाम से जाना जाता था) में राठिया, बैगा और बिरहोर आदिवासियों सहित 4,000 से अधिक लोगों की स्वास्थ्य- देखभाल करती हैं। यहां अधिकांश लोग आजीविका के लिए खेती और जंगलों से वनोत्पाद (जैसे लकड़ी, महुआ, चार, तेंदू पत्ते) इकट्ठा करने पर निर्भर हैं।

ये आबादी मिरिगुड़ा, नकाना, भंवरखोल और सेमीपाली खुर्द गांवों में बसी है और स्वास्थ्य जरूरतों के लिए मिरिगुड़ा गांव के स्वास्थ्य केन्द्र पर निर्भर हैं, जहां असुन्ता काम करती हैं। असुन्ता अब यहीं बस चुकी हैं। वह बताती हैं, "मैं यहां 2005 से हूं। मैंने बहुत बदलाव देखे हैं। पहले संपर्क साधन बहुत मुश्किल थे और मुझे एक ही दिन में 15-20 किलोमीटर पैदल चलकर अलग-अलग गांवों तक पहुंचना पड़ता था।"

साल 2015 में, जब सड़कें ऐसी नहीं थीं कि उन पर वाहन चल सकें, तो पथरीडांडगांव की एक गर्भवती महिला को एक्लैम्पसिया हो गया। असुन्ता बताती हैं, "हम उसे खाट में बांधकर बड़ी मुश्किल से यहां लाए। बच्चे का जन्म यहीं हुआ।" पुराने अनुभवों का जिक्र करते हुए असुन्ता बताती हैं कि कैसे जंगलों से होकर जाते समय उन्हें जंगली जानवरों का लगातार खतरा महसूस होता था। कहती हैं, "तब डायरिया और मौसमी बीमारियां ज्यादा हुआ करती थीं। अब ये कम हो गई हैं। उच्च रक्तचाप और मधुमेह की शिकायत कम हुई है। यह सब नियमित जांच और दवाओं की वजह से हो पाया।"

भारत में मलेरिया का प्रकोप बहुत ज्यादा है, और छत्तीसगढ़ का रिकॉर्ड इस मामले में बहुत ज्यादा गंभीर है, जहां मलेरिया के मरीजों की संख्या के मामले में छत्तीसगढ़ देश भर में तीसरे स्थान पर है। नेशनल सेंटर फॉर वेक्टर बोर्न डिज़ीज़ कंट्रोल द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार, राज्य में जुलाई 2024 में मलेरिया के 17,765 मामले थे, जो 2023 के आंकड़ों (31,706) की तुलना में कम हैं। असुन्ता कहती हैं कि जागरूकता अभियानों, नियमित सर्वेक्षणों और दवाओं से लैस मच्छरदानी के इस्तेमाल के चलते इन मामलों में कमी आई है। बाद में हम असुन्ता के साथ संजीवनी के घर गए, जहां वह अपने दोस्तों के साथ खेल रहा था। संजीवनी की मां विमला अपने धान के खेत में काम कर रही थीं, लेकिन सिस्टर असुन्ता को देखकर वह काम रोककर हमसे बातचीत करने आईं।

तकनीक मददगार है और जरूरत भी, लेकिन असुन्ता जैसे स्वास्थ्य कर्मियों की बदौलत लोगों में स्वास्थ्य प्रणाली को लेकर जो भरोसा पैदा हुआ है, उसका स्थान दूसरा कोई नहीं ले सकता। यही कार्यकर्ता हैं जिनके कारण सरकारी स्वास्थ्य सेवाएं सर्व सुलभ बन पाई हैं

***

इस क्षेत्र की सामुदायिक स्वास्थ्य अधिकारी (सीएचओ) नेहा खालको कहती हैं, "लोगों में सिस्टर असुन्ता के प्रति जो विश्वास है, उसी के चलते वे यहां आते हैं। असुन्ता के यहां आने के बाद से अब तक धरमजयगढ़ ब्लॉक के मिरिगुड़ा स्वास्थ्य उपकेन्द्र में 3,000 से ज्यादा प्रसव कराए जा चुके हैं।"

असुन्ता बताती हैं, "पहले बिरहोर (आदिवासी) लोग अस्पताल नहीं आते थे। उनके बच्चे गांव के बाहर ही पैदा होते थे। बच्चों की नाल भी पत्थर से काटी जाती थी।"

असुन्ता, बिरहोर (विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह) समाज की एक महिला का किस्सा बताती हैं जो सातवीं बार बच्चे को जन्म दे रही थी। उस महिला का पूरा गर्भाशय बाहर आ गया था। असुन्ता को उसे अंदर करने के लिए तात्कालिक कार्रवाई करनी पड़ी।

लेकिन गांव में नियमित रूप से आयोजित होने वाले स्वास्थ्य, स्वच्छता और पोषण दिवस कार्यक्रमों, प्रसव से पूर्व की जाने वाली आवश्यक जांचों और स्वास्थ्य क्षेत्र में गैर-सरकारी संगठनों के सहयोग से (यही वे संगठन हैं जो मितानिनों को प्रशिक्षण देते हैं) परिस्थितियों को कुछ बेहतर बनाया है, जिसके कारण गांव में बदलाव संभव हुआ है।

जब यह लेखक मिरिगुड़ा के स्वास्थ्य उपकेन्द्र पहुंचा, तब वहां मितानिनों (आशा कार्यकर्ताओं) की बैठक चल रही थी। जुलाई का महीना था, हाल ही में बारिश हुई थी और स्वास्थ्य केन्द्र चारों ओर हरे-भरे धान के खेतों से घिरा हुआ था।

वहां एक डॉक्टर उच्च जोखिम वाले प्रसव की पहचान को लेकर प्रशिक्षण दे रहे थे। मिरिगुड़ा की सीएचओ नेहा खालको कहती हैं, "अब हम जटिल और उच्च जोखिम वाले मामलों को धरमजयगढ़ के सिविल अस्पताल में रेफर कर रहे हैं और इन मामलों पर कड़ी नजर रख रहे हैं। भले ही हमारे उपकेन्द्र में सारी सुविधाएं नहीं हैं, लेकिन हम इसके सुनियोजित इस्तेमाल की पूरी कोशिश कर रहे हैं।

तकनीक से भी निःसंदेह रूप से मदद मिली है। लेकिन असुन्ता जैसे स्वास्थ्य कर्मियों की बदौलत लोगों में स्वास्थ्य प्रणाली को लेकर जो भरोसा और विश्वास पैदा हुआ है, उसका स्थान दूसरा कोई नहीं ले सकता। यही वे कार्यकर्ता हैं जिनके कारण सरकारी स्वास्थ्य सेवाएं सभी के लिए सुलभ बन पाई हैं। ■

अनुवाद: प्रतिमा। साभार: ruralindiaonline.org

ADVERTISEMENT RATE CARD

w.e.f. 1 September 2025

NATIONAL HERALD ON SUNDAY | संडे नवजीवन

The AJL Group has two weekly newspapers and three website portals in English, Hindi and Urdu

www.nationalheraldindia.com | www.navjivanindia.com | www.qaumiawaz.com

Commercial Display (w.e.f 1 Sept 2025)

Category of Advertisements (C/BW)	National Herald on Sunday (National Edition)	National Herald on Sunday (Mumbai)	Sunday Navjivan (National Edition)
Full Page (1650 sq.cm)	Rs 10 Lakh	Rs 8 Lakh	Rs 10 Lakh
Half Page (800 sq. cm)	Rs 6 Lakh	Rs 5 Lakh	Rs 6 Lakh
Quarter Page (400 sq. cm)	Rs 4 Lakh	Rs 3 Lakh	Rs 4 Lakh
< Quarter Page (per sq. cm)	Rs 700	Rs 450	Rs 700

PAGE PREMIUM	Display Ads BW/Color	Political Ads BW/Color
Front page	100% Surcharge	200% Surcharge
page (3 & back)	25% Surcharge	100% Surcharge
Specified page	50% Surcharge	50% Surcharge

*Advance payment is needed for all political advertisements.

Classified for festival greetings, anniversary & notices

Full page @ Rs 1,00,000 | Half Page @ 60,000

< 240 sq. cm @ Rs 175 per sq. cm

State Govt Advertisements/ C/BW

@ Rs 525 per sq. cm

The Associated Journals Limited
Herald House, 5A, Bahadur Shah Zafar Marg,
New Delhi 110002
Phone: 011-47636300 - 313
Whatsapp No: 9650400932
Email: advt@nationalheraldindia.com

Online Remittance/Bank Beneficiary Details:
Name: **Associated Journals Limited**
Bank Name: **Canara Bank**
Branch Name: **I P Estate, New Delhi-110002**
C/A No.: **90171010003955;** IFSC Code: **CNRB0019017**
GST No.: **27AAECA1180A1ZB ;** PAN No.: **AAECA1180A**

NOTE: Cheque / DD should be drawn in favor of "Associated Journals Limited" and sent to Herald House, 5-A Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi -110002.

General Terms and Conditions

w.e.f. 1 September 2025

National Herald on Sunday (Delhi & Mumbai) and Sunday Navjivan

1. All advertisements are published in Edition(s) of the paper and charges are payable strictly in advance of publication by Bank Draft or Bank Transfer (RTGS) and /or cheques only except in the case of advertising agencies accredited to INS.

2. Advertisements are accepted for publication on top of advertisements positions on an additional charge of 25%. No advertisement is however published on top of news-matter.Top of column position cannot be guaranteed even on payment of additional charge of 25%.

3. Extra charges for top of column position are calculated on the total amount payable inclusive of amount payable for specified pages.

4. Every reasonable effort is made to publish an advertisement on the date(s) specified by an advertiser. The Management however reserves the right to vary the date or the scheduled date(s) of publication, with or without notice to the advertiser, owing to the exigencies of availability of spaces.

5. The management reserves the right to refuse, suspend or stop, in its discretion, publication of any advertisement without assigning any reasons.

6. While every endeavour will be made by the Management to avoid publication of competitive advertisements in close proximity to one another, no guarantee can be given in this respect nor will the claims be entertained for free insertions in the event of announcements of rival product appearing on the same page.

7. The placing of an order by an Advertiser/Advertising Agency constitutes a warranty by the Advertiser/Advertising Agency to the Associate Joumals Limited Management that the Advertiser/ Advertising Agency has secured the necessary authority and permission in respect of the use in the advertisement or advertisements of pictorial representation of (or purporting to be of) living persons and all references to words attributing to living persons.

8. The advertisements will be charged at the rate applicable on the day of publication of the advertisement irrespective of the date of booking, date of release order and whether the advertisement is part of any package/scheme.

9. Standing instructions are accepted over Whatsapp or email. However verbal instructions must be clear and specific. Quoting reference of the previous release order and/or new scheduled dates of insertions in respect of which the instructions are given. These instructions should be given afresh either through Whatsapp/email and/or Landline phone.

10 Booking of space for premium positions in all The Associated Journals Limited publications will be confirmed only upon receipt of original releaseorder. Fax/Scanned copies, Emails will be entertained for the same.

11. "Reader" advertisements are accepted but will be distinguished from 'news matter' by a rule around the advertisement matter and expression 'advt' will be added at bottom.

12. Solus/Semi Solus positions cannot be guaranteed on the front page.

13. Cancellation charges @20% of the total cost of the front/Full page advertisement shall be levied if a cancellation of booking is made two days before the scheduled date of publication. Cancellation charges @35% of the total cost of the full front-page advertisement shall be levied if the cancellation of a booking of front/full page advertisement is made one day before the scheduled date of the publication.

14. In the event of printing mistake, omission or non-publication of advertisement, the advertising agencies shall have to furnish the instructionson behalf of their client for republication. In the event of a dispute the liability of Management shall be restricted to the amount received against sale of spaces for the advertisement received. All disputes /claims regarding advertisement /complaints must be made within a period of one month of publication date after which no claim will be entertained.

15. The Management shall not be responsible for any loss or damage caused by an error or inaccuracy in the printing of/or omission in inserting advertisements.

16. In case of dispute, the agency shall not be entitled to invoke any condition suggestive of existence of an arbitration agreement unless specifically agreed to by the Management.

17. No deduction is allowed from bills raised against publication of advertisement(s) on account of any defective insertion(s). Any claims in these respects, if admitted, will be met by publishing a corrigendum/ free insertion or the like, depending upon the merits of the claim vis-a-vis the error in publishing the advertisement(s) or other materials. Claims for refund or for compensation, if admitted, shall be restricted to the charges for advertisement received by Management. The decision of the management shall be final in this regard.

18. The advertisements released by Government/Semi Government/ Undertakings/Autonomous body are published in classified display column only at commercial rates irrespective of the number of words.

19. The advertising agencies releasing an advertisement on behalf of its client shall be deemed to have undertaken to keep the management indemnified in respect of costs, damages or other charges incurred by the Management as a result of any legal action or threatened legal action arising from and in relation to publication of any advertisement published in accordance with the release order and the copy of instructions supplied by the agency.

20. The agency shall bring to the notice of its clients these General Terms and it shall not be open to any of its clients to plead/claim or aver ignorance of these General Terms which apply to every transaction of sale of space in particular issue(s) of any of publications of The Associated Joumals Limited.

21. No agency commission is payable on the on the classified advertisements chargeable at DAVP rates.

22. Fraction of centimetre in excess of the scheduled size shall be charged as full centimetre if the advertisement exceeds the scheduled size. If the material supplied is shorter than the scheduled size, the advertisement will be charged for the size scheduled and not for theactual space occupied or consumed by the advertisement on the basis of the short size material so supplied.

23. The Management shall not be bound by notice of stoporders, cancellations, preponements/postponements or alterations/deletions/ additions in the material(s) of advertisement(s) booked for publication in special or specified position if received less than one week prior to dates of insertion. For ordinary advertisement, the stoppage or not of cancellation must reach at least four days before the scheduled date of publication of advertisement.

24. The Management reserves the rights to revise the rates and terms and conditions without any notice.

25. Every Advertiser/Advertising Agency acknowledges having read and accepted these Terms and Conditions.

26. Courts only in New Delhi, shall have the jurisdiction to entertain and decide all disputes and claims, arising out of publication of any advertisement in the Associate Journals limited publications.

27. The Management shall be at liberty to refuse to carry advertisements/ adjust amounts paid for subsequent ads against pre-existing liabilities, even without carrying such subsequent advertisement.

28. Advertising party hereby agrees to indemnify, defend and hold harmless AJL, it's directors, officers, shareholders and agents against any and all third party claims arising out of or in connection with the content or placement of the advertisement, and to the fullest extent.

29. In no event shall AJL be liable hereunder for any indirect, incidental, special, consequential, punitive or exemplary damages or losses in connection with these terms even if advised in advance of the possibility of arising of such liability, damages or losses.

30. In no event shall AJL's aggregate liability exceed Rs. 10,000 to any advertising party.